R.N.I.No.-CHHHIN16015

डाक पंजीयन संख्या

सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित त्रैमासिक

बस्तर पाति

जल्दी ही इंटरनेट पर–www.paati.bastar.com

मूल्य पच्चीस रूपये मात्र•अंक–2,सितम्बर–नवम्बर 2014

संपादकीय कार्यालयः–

'बस्तर पाति'

सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,

जगदलपुर, जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001

मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

प्रकाशक एवं संपादक

सनत कुमार जैन

सह संपादक

श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस'

शशांक श्रीधर

महेन्द्र कुमार जैन

शब्दांकन

अनूप जंगम

मुख पृष्ठ

श्रीमती मोहिनी ठाकुर

रेखांकन

श्रीमती मोहिनी ठाकुर

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से बस्तर पाति, संपादक मंडल या संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। रचनाकारों द्वारा मौलिकता संबंधी लिखित/मौखिक वचन दिया गया है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक। समस्त विवाद जगदलपुर न्यायालय के अंतर्गत।

सहयोग राशिः–साधारण अंकः पच्चीस रूपये
पंचवर्षीयः पांच सौ रूपये मात्र,
संस्थाओं एवं ग्रंथालयों के लिएः एक हजार रूपये मात्र.
सारे भुगतान मनीआर्डर/ड्राफ्ट ***सनत कुमार जैन*** के नाम पर संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजें या फिर स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के खाता क्रमांक **10456297588** में भी बैंक कमीशन जोड़कर सीधे जमा कर सकते हैं।

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक, स्वामी सनत कुमार जैन द्वारा सन्मति प्रिन्टर्स, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर से मुद्रित एवं जगदलपुर के लिए प्रकाशित

सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपनी रचनाएं कृतिदेव 14 नंबर फोण्ट में एवं एक्सेल, वर्ड या पेजमेकर में ईमेल से ही भेजने का कष्ट करें जिससे हमारे और आपके समय एवं पैसों की बचत हो। रचना में अपनी फोटो, पूरा पता, मोबाइल नंबर एवं ईमेल आईडी अवश्य लिखें।

पाठकों से रूबरू/2
काव्य/प्रीतिप्रवीण खरे/4
पाठकों की चौपाल/5
बहस/साहित्य का जमाना नहीं/7
बहस/एक कदम साथ/8
बहस/पाठक क्यों दूर हुआ/10
बहस/पाठकों से दूरीःप्रकाशक व लेखक के बीच नये रिश्ते/12
एकांकी/एक साहित्यिक विमर्श/बूड़बकसिंह राजपूत/14
साक्षात्कार/श्रीमती मोहिनी ठाकुर/17
कहानी/धरोहर/श्रीमती मोहिनी ठाकुर/19
पुस्तक समीक्षा/नीम अंधेरे/श्रीमती मोहिनी ठाकुर/21
कहानी/इंतज़ार/शिशिर द्विवेदी/23
आलेख/नारी लेखन की जरूरत/थानसिंह वर्मा/24
काव्य/अशोक आनन/रीमा चड्ढा/27
काव्य/केशव शरण/गोपीनाथ कालभोर/श्रीमती विभा रश्मि/28
कहानी/तलाश/डॉ. कौशलेन्द्र/29
आलेख/लोक संस्कृति के संरक्षण में आधुनिक साहित्य का योगदान/30
लघुकथा/मो. जिलानी/31
काव्य/कृष्ण चंद्रमहादेविया/डॉ. जगदीश वर्मा/32
काव्य/पुरषोत्तम चंद्राकर/डॉ. रघुनंदन चिले/33
काव्य/हरेन्द्र यादव/34
पुस्तक अंश/शिवशंकर कुटारे/35
लघुकथा/नरेन्द्र कुमार/35
रंगीला बस्तर/नरेन्द्र पाढ़ी/36
काव्य/शिवेन्द्र यादव/36
नव हस्ताक्षर/बढ़ते कदम/दोस्ती एक अनोखा रिश्ता/अंजली सिन्हा/37
काव्य/श्रीमती नन्दिनी प्रभाती/39
लघुकथा/महेन्द्र राजा/39
समीक्षा/निर्मल आनंद/40
कहानी/संशय/देवेन्द्र कुमार मिश्र/41
काव्य/राजेन्द्र गायकवाड़ 'रंजन'/42
ग़ज़ल/विक्रम सोनी/43
कहानी/एक और यशोदा/श्रीमती खुर्शीद बानो खान/44
काव्य/नवल जायसवाल/नसीम आलम नारवी/47
बस्तरनामा/राजीव रंजन प्रसाद/48
विश्व धरोहर/कफ़न/मुंशी प्रेमचंद/50
काव्य/जैन करेलिवी/53
आलेख/कफ़न के बहाने/54
लघुकथा/रवि यादव/56
काव्य/देव भंडारी/57
लघुकथा/डॉ. अशफॉक अहमद/57
गज़ल/श्रीमती बरखा भाटिया/58
लघुकथा/अरविंद अवस्थी/59
नक्कारखाने की तूती/60
साहित्यिक उठापटक/62
कविता कैसे बदले तेरा रूप/63
फेसबुक वॉल से/63

बुजुर्गों की इस हालत का उपाय

भारतीय संस्कार का चक्र एक ऐसी विधि है जिसमें प्रत्येक प्राणी की उपयोगिता एवं शक्ति के अनुसार कर्तव्य और अधिकार का बंटवारा किया गया है एवं उसके जीवन का, इंसान की उम्र के हर पड़ाव की क्या उपयोगिता हो सकती है और वे समय के रथ के पहियों के बीच किस स्थान पर गतिशील हो सकते हैं, वैसी जगह लगाया गया है। मेहमानों को निपटाने के लिए आजकल की सिविल इंजीनियरिंग बेडरूम को ही ड्राइंगरूम बनाने पे तुली है। जिसके रिश्तेदार हैं वही निपटे उनसे। मेहमान आते ही अपने रिश्तेदार के कमरे में घुस जाते हैं। बुजुर्ग को घुटना स्पर्श मिल ही जाता है। बुजुर्गों का सम्मान न हो, हर किसी की स्थाई सोच बनी हुई है। बुढ्ढा बड़ा ही उबाऊ है, झेलाता है, कितना गंदा है, बाथरूम की बद्‌बू आती है, आदि आदि जुमले, बुढ्ढों पर नजर पड़ते ही आप ही आप मुंह से निकल जाते हैं।

इस संस्कार चक्र का बारीक अध्ययन बताता है कि प्रत्येक जीव का अपना एक महत्व है उसका वजूद किसी न किसी कारणवश है। आधुनिक विज्ञान उसी से कुछ लेकर पर्यावरण चक्र की कल्पना किया हैं और सिद्धांत बनाकर पेश किया है, जबकि यह पर्यावरण चक्र, भारतीय संस्कार चक्र का एक छोटा सा हिस्सा भर है। आज इस भारतीय संस्कार चक्र की कमियां निकालकर, लतियाने के दौर में, हम इसकी अच्छाईयों के लिए आंखें बंद किये बैठे हैं। इस भारतीय संस्कार चक्र को हर धर्म ने सर्वमंगल कामना की प्रतिध्वनि समेटे मजबूत सहारा दिया है। न जाने कितने ही सौ–हजार साल का निचोड़ हम तक पहुंचा था, जिसे हम सहेजने की जगह, तहस नहस करने में लगे हैं।

आज के दौर में खुद ही बीमारी पैदा कर उसका इलाज करवाने का फैशन जबरदस्त प्रचलन में है। शिक्षा, जो नौकरी के लिए जरूरी है, उसने इसमें महती भूमिका निभाई है। सरकारी नौकरी की चाहत ने इस भारतीय संस्कार चक्र को उखाड़ने में अपना पूरा दम लगा दिया है। भारतीय संस्कार चक्र की शक्ति होता है परिवार और इस परिवार की शक्ति होते हैं आपसी विश्वास से ओतप्रोत सदस्य! इस परिवार की अवधारणा पर चरणबद्ध योजना के अनुसार होता हमला, स्वार्थी और गैर जिम्मेदार समाज तैयार कर रहा है। लगातार होते हमलों में विज्ञान भी परोक्ष रूप से सहयोगी बन गया है। अदूरगामी नीतियों के बदले तात्कालिक लाभ पाने वाली नीतियों से कानून बन रहे हैं। आज की जरूरत के नाम बनने वाले नए कानून विकृत शोध के चलते, अपना क्या योगदान देंगे, यह तो समय ही दिखाएगा।

प्रत्येक के लिए आर्थिक स्वतंत्रता के ढोल ने परिवार को बिखेर दिया है। बच्चे पहले झूलाघरों में पलते हैं फिर हास्टलों में। बूढ़े टीवी देखकर जीवन काटते हैं या फिर वृद्धाश्रम की शोभा बनते हैं। वृद्धाश्रम में मनोरंजक कार्यक्रम कराने वाले अपने घर के बुजुर्गों के प्रति कितने जागरूक हैं इसी बात से रेखांकित हो जाता है कि वे अपने मूल निवास स्थान से दूर बसे हैं। वे नौकरी करने वाले लोग हैं। सरकारी (गैर सरकारी) नौकरी ने परिवार में भेदभाव पैदा कर दिया है। परिवार का एक लड़का नौकरी करता है, उससे होने वाली आमदनी से परिवार के लिए कभी–कभार कपड़े लत्ते लाकर दे देता है। प्रत्येक पारिवारिक परेशानी में घर में रहने वाला लड़का परेशान होता है। तिस पर भी बाप की जायजाद पर, खेती की कमाई पर दोनों भाइयों का हक होता है। ये कैसा उपाय है ? परिवार से दूर नौकरी पर रहने वाला पारिवारिक जिम्मेदारियों से दूर स्वछंद हो जाता है। बहू, सास की रोक–टोक से दूर हो जाती है। बच्चे दादा–दादी की छांव से दूर हो जाते हैं। यह स्वछंदता, आपसी सामंजस्य की अवधारणा पनपने ही नहीं देती है। इसे नौकरी की मजबूरियों का अमलीजामा पहनाया जाता है। नौकरी का एक झटका भारतीय संस्कार चक्र से परिवार को काट देता है। जीवन के बहुत से गुण हैं जिन्हें व्यक्ति किताबों से जान सकता है पर उसकी सोच में, व्यवहार में आने के लिए सीखना जरूरी होता है। परन्तु आज के दौर में झूठ इस कदर फैलाया जाता है कि वह सच बन जाता है। लोग अपनी सुविधानुसार अपनाने में देर भी नहीं करते। टी.वी., इंटरनेट के जमाने में यह बहुत जल्दी ही असरदार हो जाता है। जीवन के परम सत्यों को छिपाकर कुछ और बताने वाले माध्यमों का प्रभाव इस कदर पड़ रहा है कि अच्छे–अच्छे आत्मविश्वासी भी डिग गये हैं। आभासी व्यस्तता ने परिवार को समय देने पर रोक लगा दी। परिवार ही सब कुछ होता है, वही एक दूजे का होता है, जानते हुए भी स्वयं को इकाई में बदल लेता है।

इस दौर में बच्चे सबसे ज्यादा उपेक्षित हैं, जबकि उनके लिए ही यह चक्र छिन्नभिन्न हुआ जा रहा है। व्यक्ति अपने पूरे न हुए सपनों के चलते, अपने जीवन में असंतुष्ट बना रहता है। उन अधूरे, छूटे हुए सपनों को बच्चों के दिमाग में थोपने–रोपने के प्रयास में, इस तरीके से उन्मादी हो जाता हैं कि उन बच्चों को संस्कार धारा से काटने में भी गुरेज नहीं करता है। बच्चों को ऐसे स्कूल में पढ़ाना जहां सुबह से शाम तक पढ़ाया जाता है, पैदा होते ही आंगनबाड़ी झूलाघर, किड्स स्कूल में भर्ती कर देना, स्कूल से आते ही ट्यूशन क्लास, उसके शौक को जानने समझने के बजाय, डांस क्लास, आर्ट क्लास, कंम्प्यूटर क्लास,

न जाने कहां–कहां ढकेलता जाता है। डॉक्टर, इंजीनियर और आजकल सी.ए., एम.बी.ए.; इससे कम तो बच्चा होना ही नहीं चाहिए। दुनिया में सभी प्रकार के व्यक्ति जरूरी होते हैं तो फिर उन लाखों बल्कि करोड़ों बच्चों का दिल क्यों तोड़ा जाता हैं, जो अपने मां–बाप की सोच को पालता–पोसता, दौड़ में हार जाता हैं ? उनका नैराश्य और मां–बाप के प्रयास में लगने वाली ऊर्जा का अकारण और प्रकृति विरूद्ध विनाश नहीं है ? स्वप्रयास से एवं स्वरूचि अनुसार नदी को बहने देना उसे स्वच्छ और शीतल बनाये रखता है। वहीं तटबंध बनाकर, बांध बनाकर उस नदी को हमारी मर्जी के अनुसार बहाना, उसमें सड़ांध, गंदगी, और विष भर देता है। बच्चों के दिल में मां–बाप अपने लिए चेतना भरने का प्रयास करते ही नहीं तो वे कैसे अपने मां–बाप के लिए संवेदनशील होंगे ? शिक्षा के प्रति जागरूकता के अभियान ने लोगों को अपनी जड़ें काटने का बहाना दे दिया है। अपने सपनों की पूर्ति की चाहना में लोग ये भी भूलते जा रहे हैं कि वे जीवन के उस दौर से जरूर गुजरेंगे जब उन्हें अपने बच्चों की सख्त जरूरत होगी। उस बुढ़ापे के वक्त को शांतिपूर्वक जीना, सम्मानपूर्वक जीना उनका अधिकार है, इसके लिए वे अपने बच्चों का उपयोग कर सकते हैं या उनका यह प्राकृतिक अधिकार है। हम प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्र बनाकर उसके अधिकारों की फेहरिस्त पकड़ाते जा रहे हैं पर कर्तव्यों को क्यों नहीं बताया जा रहा है ?

मनुष्य का प्राकृतिक स्वभाव है अपनों के बीच रहना। इस स्वभाव को बदलना असंभव है, वैसे भी ये कैसे संभव है कि अपने लिए अपेक्षा रखे बिना दूसरों के लिए राजमार्ग बनाना ?

अपने बच्चों के भविष्य के लिए सोचकर अपने से दूर करना इलाज नहीं है; बल्कि बीमारी की शुरूआत है। बच्चा एक खाली पड़त भूमि होता है, मां–बाप इस भूमि को खेती के लिए तैयार कर कुछ ऐसे बीज रोपते हैं जिनकी छांव में बच्चा भविष्य में आने वाली विपदाओं से बचा रहता है या फिर बच सकता है या लड़ने की क्षमता बनी रहती है। छाती से लिपटा बच्चा अपने पालकों से उनकी संवेदनाएं अपने भीतर समेटता है। उन संवेदनाओं के चलते ही बच्चा भविष्य में अपने मां–बाप से बिछड़ने पर दर्द महसूस करता है। कमाई के लिए मां–बाप का त्याग करने से पहले उनको अपने साथ कैसे रखे इसकी चिन्ता करता है, जिसे लोग ''होम सिकनेस'' कहकर मजाक उड़ाते हैं। बच्चों की अपने मां–बाप के बिना न जी पाने की कल्पना ही तो सच्चा प्यार है। बहुत बड़ा इंजीनियर या डॉक्टर बन कर समाज की सेवा करेगा और इधर मां–बाप उपेक्षित जीवन जीयेंगे, ये कैसी समाज सेवा है ? ये कैसा दायित्व का निर्वहन है ? ऐसा प्रचलन ही तो वृद्धाश्रमों की नींव बन चुका है। पर ये सब देखकर आश्चर्य लगता है कि लोग हंसते–हंसते खुद के लिए कब्र खोदते नजर आ जाते हैं। अपनी नकली नाक के लिए ऐसा समझाने वालों से झगड़ लेते हैं।

वर्तमान समय में व्यापारी वर्ग में अपने हार जाने का बोध व्याप्त हो गया है। बड़ी–बड़ी फर्मों के मालिक जिनके यहां दो सौ–पांच सौ कर्मचारी हैं, वो अपने बच्चों को उच्च्च शिक्षा दिलवाकर नौकरी करवा रहे हैं। छोटे परिवार के चलते मां–बाप अपने एकलौते लड़के को अच्छा पढ़ा लिखाकर अपने जमे जमाए धंधे से अलग कर रहे हैं और उनसे नौकरी करवा रहे हैं। जबकि यह निर्विवाद सत्य है कि एक धंधे को जमाने के लिए एक पीढ़ी लग जाती है और उसी धंधे से अगली पीढ़ी मोटा माल काट सकती है। फिर भी ये अंधी दौड़ क्यों चल रही है ? न जाने क्यों इस दौर में पुरानी जीवनशैली को तोड़ने मरोड़ने को ही प्रगतिशीलता माना जा रहा है जबकि अच्छाई बनी रहे और बुराई से दूर बने रहें, यह सोच होनी चाहिए थी। अनिश्चित जीवन की नींव ध ारना फैशन बनता जा रहा है। भले ही जूता काट रहा है पर पहनने में मजा आ रहा है।

बुजुर्ग जिन्हें पहले अनुभवों की गठरी मानकर ढोने में शान समझी जाती थी अब वो व्यवस्था बदल गई है। आज के समय तो बुजुर्ग ही बच्चों को ढोते नजर आते हैं। तीस–पैंतीस में शादी तो पचपन में बच्चे की नौकरी की ढूंढाई। साठ की उम्र तक बाप के आते–आते बच्चा कुछ करने की सोचता है। नौकरी मिली तो ठीक वरना सीताराम। नौकरी लगते ही बच्चे फुर्र! बुढ्ढे–बुढिया, पड़ोसियों और नौकर के भरोसे किसी तरह जी लेते हैं। इस बीच यह प्रश्न उठना लाजमी लगता है कि साठ बरस की उम्र में नौकरीपेशा का रिटायर हो जाना उसे, उसके परिवार को और समाज को यह संदेश देना नहीं होता है कि अब तुम बेकार हो गये हो, किसी लायक नहीं हो। और क्या यह सच नहीं है कि रिटायर व्यक्ति जीवन में उपेक्षित होता जाता है ? तो क्या इस उम्र के बाद की उसकी उर्जा का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए ? या फिर रिटायर होने के बाद वास्तव में व्यक्ति ऊर्जाहीन हो जाता है ?

प्रत्येक जीवन ऊर्जा पिण्ड है। हमें उसकी ऊर्जा का उपयोग करना चाहिए। तो इसके लिए क्या किया जाए ? इस विडम्बना को नियति मानकर ऐसा ही चलने दें ? इस सोच को और पुख्ता करें ? क्या यह महसूस नहीं होता कि भारतीय चक्र को फिर से जीवित किया जाए। इस संस्कार चक्र में बुजुर्ग बच्चों की देखभाल वो भी सम्मान के साथ करते हैं। घर आने वाले मेहमानों को निपटाने का काम उन्हीं का होता था। घर की चौकीदारी, घर का हिसाब, निर्णय लेने का अधिकार आदि, दुकानदार

हों तो गल्ला संभालना एक काम होता था।

आज बड़ी विडम्बना है कि ऊपर के समस्त कार्य करने के लिए नौकर रखे जा रहे हैं और घर का बड़ा बुजुर्ग उपेक्षित पड़ा किसी तरह जीवन काट रहा है। बच्चों को खिलाने के लिए आया है, घर की चौकीदारी के लिए गार्ड हैं (फ्लैट या कॉलोनी में), घर का हिसाब बैंक में है। निर्णय लेने के लिए टी.वी. के घटिया सीरियल हैं। दुकानदार हैं तो नौकरों को चोरी करते देखना मजबूरी है।

बुजुर्गों को उनके जीवन के अंत तक किसी काम में उलझाए रखना और उनकी ऊर्जा का उपयोग करना अत्यंत आवश्यक है। स्कूलों में बुजुर्गों के द्वारा कहानी, कविता सुनाने का एक पीरियड हो, रिटायर होने के बाद उसी ऑफिस में डिस्पेच रिसीप्ट का काम कम वेतन पर हो। कॉलोनियों, फ्लैट आदि में कुटीर उद्योग हों जो बुजुर्गों के द्वारा ही संचालित हों, इसकी मार्केटिंग सरकार करे, लोगों के बीच प्रचलन में लाया जाए। आधुनिकीकरण ने हमारी सोच में, किसी खराब चीज को सुधारकर उपयोग करने का ठेका गरीबों को ही दिया है, संपन्न लोग तो नए–नए आविष्कारों से जनित सुविधाओं का उपयोग करने लग जाते हैं। पुरानी चीज को फेंककर, उसे कभी याद भी नहीं करते। यदि आधुनिक समाज के अनुसार अपनी सोच विकसित करना मजबूरी है तो उसके रास्ते इस प्रकार निकाले जाए कि हम बुजुर्गों की ऊर्जा का सदुपयोग कर सके, उनके मान–सम्मान की रक्षा कर सकें, उनके लिए सोच कर सागर जैसे हृदय के मालिक न बनें बल्कि सोचें कि हम भी तो अमरफल खाकर नहीं आये हैं। हम भी बुजुर्ग होगें तब क्या होगा ? जड़ें ही सबसे पुरानी होती हैं जो तने को संभालती हैं और पत्तों को संवारती हैं।

'बस्तर पाति' के पाठकों एवं लेखकों से निवेदन है कि वे पत्रिका के सदस्य भी बनें जिससे ये पत्रिका उनकी अपनी पत्रिका बने। इस व्यस्त समय में आपका समय बचे घर बैठे पत्रिका मिले, ये संभव है मात्र आपके पंचवर्षीय सदस्य बनने पर। हमारा प्रयास है कि नये लोग भी लगातार तैयार हों, उन्हें एक मंच मिले अपनी रचनाओं को परखने और प्रकाशित करने का। इसके लिए हम आपके द्वारा अनुमोदित लोगों को प्रकाशित तो करते ही हैं साथ ही अपने क्षेत्र के स्कूल, कालेज, आश्रम में साहित्यिक कार्यक्रम भी आयोजित करते हैं। उनकी अनगढ़ रचनाओं को सुनते हैं, उन्हें कुछ मौलिक बातें समझाने का प्रयास करते हैं। उन्हें पुरानी पुस्तकें पढ़ने को देते हैं। आश्रमों में 'बस्तर पाति' के अंक लगातार भेज रहे हैं। समय के बीतने के साथ शायद सार्थक परिणाम दिखाई पड़े। इस लगातार किये जाने वाले कार्य में लोगों को आपस में जोड़ने का कार्य लगातार चलता ही रहता है। इस समय खपाने वाले कार्य में कई निस्वार्थ लोग जुड़ चुके हैं कुछ शारीरिक योगदान दे रहे हैं तो कुछ आर्थिक! बहुत से अनजान लेखकों ने अपना पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क भेजा है। इस पत्रिका के माध्यम से चलने वाला आंदोलन अपने पूर्व अनुमानों से अच्छा ही चल रहा है। हमने भी अपने सदस्यों के दम पर ठान रखा है कि नया से नया प्रयोग करते जायेंगे। अब कुछ समय में हम लागत मूल्य पर संग्रह प्रकाशन की योजना भी बनाने वाले हैं। सारा दारोमदार हमारे सदस्यों पर है कि वे ही सब कुछ हैं, हम तो मात्र सूत्रधार की भूमिका निभा रहे हैं। आशा है कि आप सभी का आर्थिक सहयोग भी मिलेगा।

आपका ही सनत

काव्य

बिटिया

आगमन से बिटिया ने
मन को हर्षित कर डाला
सूने से इस आँगन में
रिश्तों की सज गई माला
किलकारी घर में गूंजी
शहनाई ने स्वर ढाला
टिम–टिम करती आंखों में
बस चमके, चंदा आला
धुँधले से हर सपने को
मिला है रूप निराला
बेरंग से इस जीवन को
सतरंगी कर डाला
हजारों जुगनू चमक उठे
जब पलकें खोलें ताला
किरणें जब–जब फैली हैं
मुस्कानें लायें उजाला
विधि लेखे पर इतराऊँ
लक्ष्मी बन आई बाला
आगमन से बिटिया ने
मन को हर्षित कर डाला

सरहद

मैं इधर रही जब बाँझ रही
जब उधर गई तो कोख फली
किस्मत आगे क्या किसकी चली
धूप छाँव की खेल भली
बिखरी बिखरी अपनी सूरत
आँख चुभन है दिल मे ंनफरत
कैसी है ये सबकी फितरत
मौन हुई है देखो कुदरत
सब जंजीरें लगती सरहद
घर में भी तो रहती सरहद
युगों युगों से मिलती सरहद
औरत की क्यूं बनती सरहद

प्रीतिप्रवीण खरे
19, सुरुचि कॉलोनी
एम.ए.सिटी चौराहे के पास
कोटरा रोड भोपाल–462003(म.प्र.)
सम्पर्क सूत्र : 9425014719

पाठकों की चौपाल

आदरणीय संपादक महोदय, सादर नमस्कार,

'बस्तर पाति' का प्रथम अंक आद्योपान्त पढ़ने का अवसर मिला। बस्तर वनांचल में आपने जो पत्रिका प्रकाशन का कार्य प्रारंभ किया है, वह निश्चय ही एक सराहनीय कार्य है। अतः इस महत्वपूर्ण कार्य को करने के लिए हमारी ओर से शुभकामनायें स्वीकार करें। साथ ही पत्रिका के संबंध में मेरे विचार भी आप तक सादर सम्प्रेषित हैं। पत्रिका के प्रकाशन हेतु संपादकीय में जो आपने उद्देश्य बताया है, उस उद्देश्य को लेकर पत्रिका निरन्तर डटी रहेगी, यह अपेक्षा है। बड़े लेखकों को पत्रिकाएँ सहर्ष स्वीकार करती हैं, परंतु नये व उदीयमान लेखकों को मंच नहीं मिल पाता। आपने नए रचनाकारों को प्रोत्साहित व प्रशिक्षित करने की बात कही है, इसके लिए भी आप साधुवाद के पात्र हैं। जो रचनायें छपी हैं, काफी अच्छी हैं। बस पत्रिका में कहीं–कहीं प्रूफ की कमी अखरती है, तथापि यह कोई बड़ा विषय नहीं है। मुखपृष्ठ में श्री बंशीलाल विश्वकर्मा की कृति सहज ही अपना ध्यान आकर्षित करती है, बस्तर के परिप्रेक्ष्य में आवरण चित्र का चयन अत्यंत सटीक है। पत्रिका के अंदर चितेरा जी के द्वारा रेखाचित्र बनाये गये हैं, जो पत्रिका की सुंदरता बढ़ाते हैं।

भरत कुमार गंगादित्य, द्वारा,श्री धन्नू महाराणा का मकान, हिकमीपारा, जगदलपुर छ.ग. 494001 मो. 09479156705

प्रिय भाई, बस्तर पाति का अगस्त अंक मिला, धन्यवाद। आदिवासी जीवन, वहां की संस्कृति और लोकधर्मी कलाओं पर आधारित यह पत्रिका निःसंदेह पाठकों के ज्ञान और समझ में अप्रत्याशित मदद करती है। श्यामनारायण श्रीवास्तव की कविताएं, उषा अग्रवाल, वर्षा रावल की कहानियां प्रभावित करती हैं। यूं तो पत्रिका प्रकाशन दुरूह कार्य है, सामग्री चयन से लेकर उसकी टायपिंग, पेजिंग, सेटिंग के साथ–साथ और आर्थिक पक्ष मजबूत रखना, कुल मिलाकर बिना सहयोग के यह कार्य सम्भव नहीं हो पाता है। फिर भी आपका प्रयास अच्छा है। कागज और छपाई पर थोड़ा ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है। आशा है स्वस्थ होंगे।

डॉ.शोभानाथ शुक्ल, सम्पादक कथा समवेत, 1274/28, बढैयावार, सिविल लाइन्स–2, सुल्तानपुर–228001

आदरणीय संपादकजी सादर अभिवादन, नवीन पत्रिका में अनेक विधा की रचनाएं पढ़कर प्रसन्नता हुई। पत्रिका में रचनाओं का चयन उत्तम ढ़ंग से हुआ है। संपादक मण्डल को अशेष शुभकामनायें।

पवन तनय अग्रहरि, पुराना चौक, शाहगंज–223101 जौनपुर, उ.प्र.

प्रिय सनत कुमार जी शुभाशीष, आपके लिए कला संबंधी सुझाव देना चाहूंगा। पत्रिका में चित्रों का मुद्रण त्रुटिपूर्ण है। आज की तकनीक में अनेक सम्भावनाएं हैं, एक बार चलन में तो लाकर देखिए। महान्तीजी को सुन्दर चित्रों के लिए बधाई। वर्णव्यवस्था और उचित अंकन उनकी तूलिका में समा गई है। तीव्रगति भी समविष्ट है। मैंने देवनागरी को समीप से जाना है। ध्वनि ही उसकी जन्मदायिनी है अतः शब्दों का अंकन त्रुटिपूर्ण न हो। उदाहरण–कुन्ती (कुंती) पर विचार करें। आनेवाला कल और त्रुटियां डाल देगा। श्र अक्षर तोड़ा नहीं जा सकता है–आज यह चलन है कि उसे तोड़कर श के स्थान पर छापा जा रहा है जोकि दोषपूर्ण है। आपकी पत्रिका के कुछ दोष हैं ॅ, ण, त्ति आदि। शुद्ध लिखिए और शुद्ध छापिए। देवनागरी का कूड़ा मत करिए। न के कई रूप हैं उन्हें शुद्ध लिखिए। इटालिक छापने का चलन चला गया है उसकी जगह बोल्ड आ गया है। शिवम् में बिन्दी (अनुस्वार) नहीं लगता है। प्रत्येक पृष्ठ पर बस्तर पाति सादे फण्ट में छापें–लोगो की तरह नहीं। मूल्य व अन्य विवरण आवरण पृष्ठ पर नहीं छापते हैं। रचनाओं एवं लेखकों को सीमित न करें–अनुरोध है।

नवल जायसवाल, प्रेमन, बी 201 सर्वधर्म, कोलार रोड, भोपाल–462042, फोन–07552493840

आदरणीय नवलजी, नमस्कार एवं बहुत–बहुत धन्यवाद–आपने इतनी बारीकी से 'बस्तर पाति' का अध्ययन किया और अपने अनुभवों के आधार पर सुझाव प्रेषित किया, पत्र और फोन द्वारा! पत्रिका प्रकाशन के पूर्व लेखन कर्म तक सीमित व्यक्ति को आपके द्वारा सुझाये गये बिन्दु ध्यान में आते भी हैं या नहीं–मुझे तो नहीं आये थे। अब जब प्रकाशन कार्य से जुड़ चुका हूं अतः इन पर ध्यान जाने लगा है। भविष्य में ध्यान रखूंगा। **संपादक "बस्तर पाति"**

नमस्कार, आशा है आप सानंद होंगे। 'बस्तर पाति' का अंक–2 मिला। आभार। सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित इस पत्रिका की गद्य–पद्य की सभी रचनाएं पत्रिका के उद्देश्यानुरूप, प्रासांगिक, पठनीय और स्तरीय हैं। आवरण आकर्षक। चयन उत्तम। मुद्रण अपेक्षानुरूप। संपादन प्रशंसनीय। एतदर्थ आपको बधाई। कृपया लोकभाषा की रचनाओं को भी स्थान दें व उन्हें प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करें। आगामी अंक की प्रतीक्षा में।

अशोक 'आनन', मक्सी–465106 जिला–शाजापुर (म.प्र.) मो.–09977644232

जनाब सनत जैन, आदाब, आपने 'बस्तर पाति' अंक–2 जून–अगस्त भेजा, शुकरिया। रऊफ परवेज से भी मुलाकात करा दी। वे अच्छे शायर और बेहतर इंसान हैं।

नईम कैसर, 31–शिमला हिल्स, भोपाल (म.प्र.)

प्रिय सनतजी, 'बस्तर पाति' का प्रकाशन बस्तर के रचनाकारों के लिए गौरव का विषय है। मैं उन समग्र ख्यातिलब्ध रचनाकारों को बधाई देता हूं जिनके ज्ञान के मोती से यह पत्रिका बहुउपयोगी हो सकी है। बस्तर की प्रकृति, समाज और संस्कृति का अपना वृहत् और गौरवमयी इतिहास है। आशा है भविष्य में इस तरह की रचनाओं का समावेश होगा। 'बस्तर पाति' के माध्यम से कई प्रतिभाओं को निखारने का अवसर प्राप्त हो रहा है। रचनाकारों ने अपनी कविताओं के माध्यम से अपनी भावनाओं को निश्चल रूप में व्यक्त किया है, उन्हें मेरी शुभकामनाएं। 'बस्तर पाति' के संपादक एवं सहयोगियों ने संपूर्ण बस्तर ही नहीं अपितु देश भर के रचनाकारों को एक सूत्र में पिरोने का प्रण किया है, उन्हें मेरा शत्–शत् नमन। मैं 'बस्तर पाति' के उज्जवल भविष्य की कामना करता हूं।

शिवशंकर कुटारे, चित्रकोट रोड, जगदलपुर छ.ग. मो.–09406294695

आदरणीय संपादक महोदय, सादर नमन्, आपकी पत्रिका 'बस्तर पाति' का प्रथम अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका का प्रथम अंक होने के बावजूद पत्रिका का अंक सराहनीय है। जहां हम लोग समस्त सुविधाओं के बावजूद पत्रिका चलाने के विभिन्न संकटों से गुजर रहे हैं ऐसे में आपका और आपकी टीम का इतने दुर्गम इलाके में रहते हुए पत्रिका का संपादन, प्रकाशन करना अच्छा लगा। आपकी इस पत्रिका द्वारा न केवल आंचलिक प्रतिभाओं को मौका मिलेगा बल्कि विचारों के आदान–प्रदान का यह पत्रिका मंच साबित होगी। पत्रिका परिवार को मेरी तरफ से हार्दिक शुभकामनाएं।

शिशिर द्विवेदी, दुर्वादल पत्रिका, 257 रामबाग, गांधी नगर, बस्ती, उ.प्र. मो.–09451670475

सनत जी अभिवादन, 'बस्तर पाति' का अंक–2 मिला, मुखपृष्ठ देखकर मन अनायास ही आदिवासी अंचल में पहुंच गया, मानों चित्र सजीव हो गया। एक विचार मन में उठा–

भारत मेरा / मुस्कुराते फूलों का / है गुलदस्ता

जंगल की हरियाली आंखों में तैरने लगी, हाथ प्रार्थना के लिए उठ गये–

हे हरियाले / लहलहाते वन / प्राणवायु दो

सनत जी! आपको बहुत–बहुत बधाई। आपने सुन्दर आवरण के साथ सभी विधाओं का संपादन कर आकर्षक संयोजन किया है, आदिवासी अंचल पर लिखी कथा, कविता पढ़ मन द्रवित हो गया कि अब तो जंगल बचाने के लिए सचेत हो जाओ अन्यथा एक दिन ऐसा आयेगा जब–

तिनका लिए / चिड़िया थक गयी / डाली न मिली

जैसी स्थिति आ जाए। 'पाठकों से रूबरू' और 'बहस' पत्रिका को उत्कृष्टता प्रदान करते हैं।

कमलेश चौरसिया गिरिश–201 धरमपेठ, नागपुर (महाराष्ट्र) मो.–08796077001

मान्यवर संपादक महोदय, शुभ अभिनंदन, इंदौर प्रवास के दौरान 'बस्तर पाति' (त्रैमासिक) जून–अगस्त अंक बुक स्टाल से खरीदकर पढ़ा। आदिवासियों पर यह पत्रिका आश्वस्त करती है। विशेषकर मुक्तछंद कविताओं में कुछ सुधार की आवश्यकता है। बाकी गीत, ग़ज़ल, कहानी, लघुकथा, आलेख पूर्णरूप से आश्वस्त करते हैं।

रमेश मनोहरा, शीतला गली, जावरा (म.प्र)–457226 जिला रतलाम मो.–09479662215

संपादक महोदय बस्तर पाति का अंक मिला, धन्यवाद। पत्रिका प्रकाशन की हार्दिक शुभकामनायें। पत्रिका मे उत्तरोत्तर सुधार सराहनीय है। अंक–2 में शशांक श्रीधर की रचनाएं चिन्ता बस्तर में अमन की एवं बाबूजी का चश्मा दोनों ही प्रेरणादायी कविताएं लगीं। उनको साधुवाद।

मो. जिलानी चन्द्रपुर, महाराष्ट्र

साहित्य का जमाना नहीं

क्या ऐसा कोई समय आएगा जब मनुष्य को साहित्य पढ़ने की आवश्यकता नहीं होगी। सद्–साहित्य, कला रचना से मनुष्य का नाता सम्पूर्णतः टूट जाएगा।

संभवतः दो ही ऐसी स्थितियां हो सकती हैं– एक, जब मनुष्य इतना प्रबुद्ध और आत्मज्ञानी हो जाए कि वह सदा लीन रहे। स्वयं में, संसार के सच में। दूसरे, जब वह इतना अल्पज्ञानी हो कि उसे गधे से भी निम्न माना जाए। यानी जब वह या तो बोझ ढोने में लीन रहे या घास खाने में। तीसरी स्थिति उसके लिए नहीं है।

क्या यह संभव है कि मनुष्य नामक प्रजाति के ये दो ही भेद हों। ये दोनों ही अतिवादी–भेद हैं और दूसरे यह कि इस प्रकृति–रचना की तरह मनुष्य भी एक गतिशील प्राणी है। कोई स्थिर संरचना नहीं। पुनः मनुष्य की जिज्ञासु प्रवृति होने के कारण वह प्रश्न पूछता है। जीवन द्वारा उठाए सवालों से वह जूझता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि विद्यालय और महाविद्यालय सिर्फ किताबी ज्ञान देते हैं। जीवन के वास्तविक प्रश्नों से मुठभेड़ मनुष्य को अकेला ही करना होता है। चाहे ये मुठभेड़ मानसिक हों, आत्मिक हों, शारीरिक हों। व्यक्तिगत हों या सामुदायिक। इन सवालों के हल नितांत अकेले ही खोजा जाता है और अब तक मानव विकास में ऐसे गूढ़ तत्व अकेले ही खोजे गये हैं। अर्थात् जाने–अनजाने, सत्य हमें आकर्षित करता है। संसार के झूठ और सच प्रेरित और अभिप्रेरित करते हैं। द्वन्द इसका मूल चरित्र है। सत्य एक गूढ़ पहेली की तरह है और यह समय, स्थान तथा व्यक्ति सापेक्ष होता है। एक का सत्य सबका सत्य नहीं हो सकता। समाज में अनुशासन के लिए एक आचारसंहिता सब–पर समान रूप से लागू की जा सकती हैं, पर जहां तक व्यक्तिगत सत्य की बात है, व्यक्तिगत ज्ञान की बात है, व्यक्तिगत मोक्ष या मुक्ति की बात है, व्यक्तिगत सुख का दुःख का सवाल है, यह एक जैसा लगते हुए भी सबका नितांत निजी और भिन्न होता है। और यदि आप वास्तव में सच के प्रति, यथार्थ के प्रति, चाहे जिस नाम से पुकारें, जरा भी आग्रह रखते हैं तो आपके लिए सिर्फ साहित्य ही समाधान है। बल्कि ज्यादा लोकतांत्रिक शब्दावली में ये कहा जाए कि यहां साहित्य आपका अच्छा मित्र हो सकता है। चाहे जिस भाषा में, जिस दुनिया की वो रचना हो।

एक सफल एम0बी0ए0 ग्रेजुएट, सफल डॉक्टर या इंजीनियर या ऐसे ही सफल सिविल सेवकों के लिए कहा जाता है कि अब इन्हे पढ़ने की आवश्यकता नहीं, इन्होने खूब रगड़कर पढ़ाई की है। अब कितना पढ़े, अब हो गया।

अर्थात् यह युवा फैशन है कि पढ़ाई सिर्फ नौकरी पाने तक ही सीमित है। यह तथ्य हमारे आस–पास बिखरा पड़ा है। जिन्हें सचमुच कुछ पढ़ना चाहिए उन्होंने पढ़ना बंद कर दिया है।

एक सवाल उठता है– क्या जीवन या संसार इतना सीमित होता है ? क्या मानव जीवन की सार्थकता सिर्फ इतनी भर है– पढ़ाई, नौकरी शादी और बच्चे! मनुष्य होने की परिभाषा बस इतनी ही.....? अवश्य इस परिभाषा में एक आलीशान बंगला और एक लक्जरी गाड़ी, एक शानदार बैंक–बैलेंस आप जोड़ सकते हैं। (रसिक लोगों के लिए दूसरी बीवी भी जोड़ लें।)

क्या ये चीजें अंतिम यथार्थ हैं जो हमें पूर्णतः तृप्त करती हैं ? लो, मानव विकास–चक्र सम्पूर्ण हुआ!

यह संसार जो अनंत है, यह जीवन जो गहरा और न जाने कहां तक विस्तृत है– हमें चुनौतियां नहीं देता ? सृष्टा से क्या चूक हो गई कि उसका जादू लोगों को आकृष्ट नहीं करता। लोग एक ठहरे तालाब की तरह स्थिर हो जाते हैं। सत्य हमें रोमानी नहीं प्रतीत होता! एक उदास, नीरस और खुश्क जीवन से हम अभिप्रेरित रहते हैं– अपनी नियति मान! मजा कि हम खुश हैं!

लोगों का जीवन के प्रति नजरिया और उनका व्यवहार परेशान करने योग्य है। समय आप पर टूट पड़ा है– मोबाईल कभी भी आपकी निजता में प्रवेश कर जाता है। टेक्नोलॉजी के आप–हम सभी गुलाम हो गये हैं। बच्चे–बूढ़े सभी को सोशल मीडिया और टीवी खाए जा रहा है। हम–सब अदृश्य ज़ंजीरो से बंध चुके हैं। हमारी भीतरी पुकार, अन्तर की आवाज कहीं दब सी गयी है। बाहर–शोर है। मजा ये कि हमें इस बात का अहसास भी नहीं कि हम बंध गये हैं। बंधुआ मजदूर की तरह। हमने स्वतंत्रता का अर्थ ही खो दिया है। क्योंकि अपनी स्वतंत्रता हम इन्हीं चीजों में ढूंढने लगे हैं। पहले से बेहतर भौतिक सुख! पहले से बेहतर कार......,बेहतर नौकरी.........! बेहतर पति या पत्नी या ब्वाय फ्रेंड या गर्लफ्रेंड!

भागना.....सिर्फ भागना....! ठहरने की जरूरत ही नहीं। बेशक, संसार में स्थिर कुछ नहीं मगर इस तरह की भागम–भाग ? ऐसी संस्कृति, ऐसी प्रबुद्ध कोटि का मानव जो सिर्फ सुविधाओं के पीछे भाग रहा है, दूसरों को इसके पीछे भागता

देख रहा है, अपने पीछे लोगों को भागता देख रहा है– वह किस तरह ठहरे और हम कहें कि भाईजान! दो पल सांस तो लो–––! यह साहित्य है। यह तुम्हारा अच्छा मित्र हो सकता हैं। दो पल रूको तो !

मगर ऐसे ही भागते लोग कहते हैं– अब साहित्य का जमाना नहीं ! तुम किस जमाने की बात करते हो–––!

एक कदम साथ

प्रगति और टेकनोलॉजी के इस युग में साहित्यिक पाठकों की कमी लगभग पूरी दुनिया में महसूस की जा रही है, दुनिया भर के संवाद का प्रकाशक और लेखक इस नये संकट से किस तरह सामना किया जाए विचार कर रहे हैं। बदलते वक्त के साथ ऑनलाइन रीडिंग के महत्व को समझा गया है। हालांकि पुस्तकों का महत्व शाश्वत है– ऐसा लगभग सभी धूर विद्वान और साहित्य प्रेमी मानते हैं।

मगर हिन्दी में स्थिति बड़ी विचित्र है। यहां बरसे कंबल भीगे पानी कबीर की उलटबांसी का महायुग चल रहा है। संपादन और प्रकाशन जगत बजाए अच्छे लेखन, नये तरह के लेखन, या आम लोगों के लिए लेखन व वितरण प्रोत्साहित करने की बजाए सुन्दरी लेखिकाओं की ओर दौड़ लगा रहे हैं। इस सौ मीटर की दौड़ में अलबत्ता सभी शरीक होकर बढ़िया रिले रेस का नजारा पेश करते प्रतीत होते हैं। इसी भीड़ में कुछ संपादक और लेखक मोटे–मोटे ग्रंथों से 'नवीन क्रांति' ढूंढ रहे हैं। ऐसा लिख मारो कि तुम लिखो हम समझे मगर तुमने क्या लिखा तुम्ही न बूझो। है न उलट–बांसी! प्रतीत होता है वर्तमान हिन्दी साहित्यिक परिदृश्य की चुनौतियों से या तो समझौता कर लिया गया है, घुटना टेक लिया गया है या फिर उत्तर–उत्तर आधुनिकता में जाकर अपना चेहरा छिपा लिया गया है। कहां पाठक किसका पाठक, किधर पाठक, कौन पाठक–––––?

इस परिदृश्य में प्रकाशन सबसे मजे में है। लेखक, संपादक, प्रकाशक और पाठक (वितरण), इस कड़ी में लेखक है– जो अपनी किताब छपाकर 'लेखक' नामक जीव में शुमार हो जाता है। फोटो खिंचवाता है। अपने लिखे की स्वयं की तारीफ करता है। अपनी किताब का स्वयं ही ब्लर्ब लिखता है। पुस्तक का 'कवर पेज' भी स्वयं ही पसंद करता है। मतलब समस्त 'भार' वह स्वयं ही वहन करता है। कुछ पाठक भी ढूंढ लाता है जैसे नेताजी के भाषण के दौरान गांव–गांव से राजनैतिक कार्यकर्ता 'भीड़' जुटाते हैं जिसका फायदा प्रकाशक उठाता है। मतलब प्रकाशक कहता है– मजे में हम ! और अंततः पुस्तकों की एक निश्चित मात्रा लेखक को 'भेंट' करने के बाद पूरी संभावना के साथ सभी किताबें गोदामों मे पढ़ी जाती हैं। ये गोदाम आधुनिक हिन्दी साहित्य की रीडरशीप की आधारशिला हैं। पिलर! यहां माने हुए लोग सरकारी शाहों के साथ मिलकर पुस्तकें डंप करते हैं!

है न उलटबांसी!

सत्य ये है कि, बल्कि ये कहें कि सामने जो दृश्य है बड़ा चुनौतीपूर्ण है। उदारीकरण के बाद मध्यमवर्गीय हिन्दी वर्ग पूरी तरह अंग्रेजियत में डूब चुका है। शिक्षा और नौकरी–बड़ा बेसिक सा सवाल है। इस पर बहुत कुछ पढ़ा–लिखा और सुना जा चुका है। आजादी के पैंसठ साल बाद भी अभी हाल ही में आई0ए0एस0 की परीक्षा में हिन्दी की अनिवार्यता खत्म करने की बात की जा रही थी। वो कौन से मस्तिष्क हैं जो ऐसा सोचते हैं ? इसकी क्या वजह (यह स्वार्थ) हो सकती है। बात खींचने पे लम्बी जाएगी। सीधा सा सवाल है– या तो हमने अपनी भाषा के प्रति स्वाभिमान पैदा नहीं किया या फिर एकदम शार्ट–कट् संकीर्ण रास्ते पर चलना स्वीकारा है– हिन्दी पढ़कर मिलेगा क्या! जब नौकरी हमें अंग्रेजी से ही हासिल होनी है। इस भाव ने एक संस्कृति का रूप ले लिया है। अपसंस्कृति! अंग्रेजी स्कूल के बच्चों के बीच हिन्दी स्कूल के विद्यार्थी अछूत से लगते हैं। बेचारा हिन्दी वाला स्वयं ही अपने को दूर–दूर फासला बनाने पर मजबूर है। इस नये छूआछूत की तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता ।आप बच्चे को नहीं समझा सकते कि बेटे तुम हिन्दी माध्यम में पढ़ते हुए भी अच्छी अंग्रेजी सीख और लिख सकते हो। अच्छी नौकरी पा सकते हो ।

क्या यह इतना आसान है। ऊपर का प्रवचन बड़ा सस्ता प्रतीत होता है – मगर बच्चे के मन में ? क्योंकि अंग्रेजियत का माहौल उसकी हीनता को बिना बताए लक्षित करती है।

यही भारत में पनपी अंग्रेजियत है जिसके हम सब शिकार हुए हैं– और यह एक दिन में नहीं हुआ है। वर्षों की गुलामी तो एक कारण है ही, कहां हम आजादी के बाद इस गुलामी भरे कवच को निकाल फेंकते, मगर हमने तो और गिरह बांध लिया। आखिर वो हमारी श्रेष्ठता की निशानी जो ठहरी !

जब हिन्दी वाले ही हिन्दी को वो सम्मान नहीं दे पा रहे, जिसकी वो हकदार है– तो क्या फ्रेंच से लोग आएंगे ये बताने कि आपकी भाषा अच्छी है? अच्छा साहित्य और अच्छा ज्ञान हासिल किया जा सकता है। बल्कि अपनी ही निजी भाषा में तरक्की संभव है।

यहां तो हिन्दी हाशिए पर दिखती है – मगर क्या मजबूरी है कि कैटरीना कैफ यहां समुद्र पार से आकर हिन्दी सीखें। बड़ी–बड़ी कॉरपोरेट कंपनियां हिन्दी में विज्ञापन करें। उनके विक्रयकर्ता स्थानीय व हिन्दी में बात करें। लाखों करोड़ों की संख्या में हिन्दी अखबार पढा जाए। क्यों......?

क्या यह हिन्दी की ताकत नहीं !

लेख का प्रारंभ हिन्दी साहित्य में पाठकों का न मिलना समस्या से किया गया था। मगर प्रसंग अनचाहे कुछ अन्य पहलूओं पर चला गया। यह अनजाने नहीं हुआ। आखिर मुम्बई सिनेमा, टीवी सीरीयल्स, बड़ी बिजनेस कंपनियां जब हमारे बोले, लिखे और समझे जाने वाली राष्ट्रभाषा हिन्दी के महत्व को स्वीकार करती हैं तो हम हिन्दी के लेखक, संपादक, समीक्षक और प्रकाशक क्यों नहीं ? (प्रकाशकों का चिन्तित न होना साफ–साफ दिखता है।) हिन्दी लेखक चुप क्यों है ? क्या वह अपने छपवाए (स्वयं के भार से, समस्त भार से) पुस्तक से ही परम संतुष्ट हो गया है ? अगर ऐसा है तो निश्चित ही उसमें वो रचनाभाव नहीं है जो एक लेखक/लेखिका में होना चाहिए। वह यथा स्थिति कैसे स्वीकार कर सकता है?

मगर यही सच है। निर्मम, कठोर, विडंबना से भरा !

हिन्दी साहित्य के वर्तमान स्वरूप को एक लेख में समझ लेना या समझा देना संभव नहीं। लेखन, संपादन, प्रकाशन, वितरण (पाठक) आलोचना, समीक्षा इत्यादि इसकी कई कड़ियां हैं। ये कड़िया आज अनिवार्यतः बहुत सीमित रह गयी हैं। इस कड़ी में दो लोग खासे नुकसान में हैं– एक सच्चा लेखक/ कवि/शायर इत्यादि तथा दूसरा आम पाठक। यहां सच्चा और 'आम' शब्द विवाद पैदा कर सकता है, मगर आशय स्पष्ट है। बेशक, मैं यही कहना चाहता हूॅ कि इस 'स्वयं के भार' के युग में दस किताबों में कौन सी सही किताब है– लेखक महोदय का स्तर क्या है– सवाल तो उठता ही है। कौन सी किताबें अच्छे ढंग से वितरित हो रही हैं ? क्या सचमुच हिन्दी साहित्य की पुस्तकें शहरों के भीतर, मुख्य केंद्रों तक पहुंच पा रही हैं? भीतरी केंद्र छोड़िए, छोटे जिलों के मुख्यालय में क्या एक भी साहित्य की ऐसी दुकान है जहां साहित्य की तमाम अच्छी लघु पत्रिकाएं और प्रकाशित सभी किताबें प्राप्त हो सकती हैं ?

बहुत पेचीदा सवाल है। लघु पत्रिकाओं तक तो ठीक है, क्योंकि दो–चार वर्षों में ऐसी नियमित लघु पत्रिकाएं अपना परिचय पाठकों को दे देती हैं, पर किताबें ? कौन से कवि, कहानीकार या उपन्यासकार या निबंधकार को मानक माना जाए। यहां तो भीड़ है। या फिर बायो–डाटा पे भरोसा किया जाए? इस माहौल में मेनस्ट्रीम के महासाहित्यिकार दिल्ली में बैठकर युवा सुन्दरियों की किताबों के बारे में विचित्र फतवे जारी करते हैं। ऐसे फतवे देश के अन्दरूनी इलाकों में क्या, मुख्य मार्ग तक भी पहुंच नहीं पाते। वे पुस्तकें सिर्फ समकालीन आलोचकों, समीक्षकों और 'होने वाले लेखकों' की जमात तक ही वितरित व पठित हो पाती हैं। आज हिन्दी की बेस्ट सेलर किताब यहीं जन्म लेकर यहीं मर जाती है। हिन्दी साहित्य के महान केन्द्र चाहे दिल्ली हो, लखनऊ हो, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना, रांची, भोपाल, आगरा या हिमाचल प्रदेश हो, सबकी कहानी एक सी है। सब जगह अठारह या सतरह जनेऊ वाले बाबा अपना फाटक खोलकर शिष्य/शिष्याओं की भीड़ इकठ्ठा कर रहे हैं। कहीं चन्दन का टीका लगा है तो किसी के माथे पर आटे का! कहीं लम्बावाला छाप है तो कहीं गोलवाला! कोई धोती लंगोटवाला ठहरा तो कोई सफारी सूट में सिगार वाला! मथुरा वाले बाबा और द्वारिका वाले महापंडित, तो कहीं पांडिचेरी वाले बाबा अपना नया स्कूल खोल दिये हैं। इनके पास सब कुछ है सिवाए 'आम' कहे जाने वाले पाठकों के।

इस च्यूंगम को जितना चबाओ उतना चबेगा। थूकते भी नहीं बनता क्योंकि कुछ नहीं से कुछ तो भला ठीक है। इन बाबाओं का दुःस्साहस देखिए– सबके सब क्रांतिकारी हैं। महान क्रांतिकारी!

'बस्तर पाति' का जन्म ही इन परिस्थितियों की असंतुष्टि से हुआ है। (सावधान– हम क्रांति मचाने नहीं निकले हैं।) 'बस्तर पाति' बस इतना चाहती है कि उन लेखकों को ढूंढे जो लिखने के पहले और लिखने के बाद ये सोचते हैं कि उनका पड़ोसी जो बारहवीं फेल है– उसका लिखा समझ पाएगा? उसके लिखे को रूचिपूर्वक पढ़ेगा और पुस्तक या पत्रिका के लिए कुछ खर्च करना चाहेगा। मुफ्त का माल नहीं उड़ाएगा। सच तो ये है कि 'बस्तर पाति' लेखन, प्रकाशन, संपादन और वितरण (पाठकों की तलाश और पाठकों में शब्दों के प्रति आकर्षण पैदा होने वाले लेखन) के लिए प्रतिबद्ध है। जिन्हें 'एजेन्डा' कहना

पसंद है तो यही हमारा साहित्यिक एजेंडा है। हम 'बस्तर पाति' के 'बहस' कॉलम के मार्फत लगातार इस परिवर्तित हो रहे परिदृष्यों की खबर लेंगे, अपने प्रयासों का हवाला देंगे। अपना सुखः–दुःख आपसे बांटेंगे। हम कुछ नया करने का दावा नहीं कर रहे हैं, हम तो बहुत पुराने ढर्रे पर चलना चाहते हैं। हम अपने छोटे से प्लॉट में देशी खाद डालकर देशी चावल पैदा करना चाहते हैं। हम आपका भोजन नहीं हो सकते, मगर हम हैं अपने खांटीपन के साथ– यह अहसास आपको हो।

क्या आप एक कदम 'बस्तर पाति' के साथ चलना चाहेंगे ?

पाठक क्यों दूर हुआ ?

पिछले 20–25 वर्षों में दृश्य में आमूल–चूल परिवर्तन हुआ खासकर उदारीकरण की प्रक्रिया के बाद ! भाषा, व्यापार, साहित्य, कला, सिनेमा हर क्षेत्र प्रभावित हुए बिना रह न सके। भाषा और शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण और पब्लिक स्कूलों की अवधारणा ने अंग्रेजी की महत्ता और अधिक स्थापित की– पहले से ज्यादा। दूसरे– पहले जहां हिन्दी के अनुवादक, हिन्दी के प्राध्यापकों की मांग होती थी वे सिमट गये। इंटरनेट ने अंग्रेजी को और भी अनिवार्य सा कर दिया। मध्यम वर्ग के उदय ने पब्लिक स्कूलों की ओर दौड़ लगाई जहां हिन्दी साहित्य की जगह अंग्रेजी लिटरेचर ने स्थान लिया। हिन्दी काम–चलाउ, आ जाए चल जाएगा, मगर अंग्रेजी का व्याकरण और प्रवाह दुरूस्त हो। अंग्रेजी का प्रचलन बढ़ गया। पब्लिक और मिशनरी–स्कूल कालेजों में अंग्रेजी के प्रकाशकों द्वारा आज भी स्कूल–स्कूल, कालेज–कालेज जाकर अपने प्रकाशनों की सूची बांटी जाती है। हर विद्यार्थियों को पुस्तकें (अंग्रेजी में) खरीदने के लिए एक तरह से बाध्य सा किया जाता है। और, प्रकाशकों द्वारा ऐसी किताबें छापी जाती हैं जो 'टीनएज' अर्थात् किशोरवय के उपयुक्त हों। यही हाल स्कूली बच्चों के लिए भी किया गया जबकि हिन्दी के प्रकाशकों के यहां ऐसी किसी योजना की आवश्यकता नहीं समझी गई। वैसे भी हिन्दी पाठशाला गरीबी रेखा वालों के लिए है जहां दोपहर के भोजन की व्यवस्था शासन द्वारा की जाती है– क्या उनके पालक 200/– रू0 की किताबें खरीद पाएंगे ? (हालांकि प्रकाशक चाहें तो 20/– रू0 की ऐसी किताबें उपलब्ध करा सकते हैं– मगर 'कल्याणकारी राज्य की स्थापना' सिर्फ यहां संविधान की आदर्श भावना भर रह गयी है।)

अंग्रेजी प्रकाशकों ने युवावय के रोमांटिक, सेक्स–विषयक साहित्य प्रचुरता में छापे। युवा वर्ग को आकर्षित किया। युवाओं को प्रतिनिधि चरित्र बनाया। हिन्दी में 'देवदास' और धर्मवीर भारती कृत 'गुनाहों का देवता' के अतिरिक्त और कोई नाम आगे नहीं आ सका। हिन्दी वाले ठीक इसी समय बाहर के लैटिन अमेरिकी देशों और पश्चिम से विचार आयात किये। जब देरिदा महाराज का वहां 'विखण्डन' हो गया तो यहां उनका 'मण्डन' करने चेरीवाले बाबाजी महाराज अपना सिर मुड़ा के बैठ गये।

इस तरह प्यारे पाठकों! (इस लेख को पढ़ने वाले) हिन्दी का मास युवा पाठक गया भाड़ में! ज्ञानियों, बाबाओं ने ऐसा ऐसा बम फेंका कि बेचारे पाठकों की तिर्री हो गयी ! पाठक गये, बच गये लेखक! ऐसा लेखक जो अपने सहकर्मी, वरिष्ठ लेखकों को देखकर पूछता है – आप कौन ? आप कहां ? आप क्या हैं !

हिन्दी का हक् किसी और ने नहीं, किसी बाहर के आक्रमणकारी ने नहीं छीना (छीनता प्रतीत होता है – हम अभी भी बचे हैं।) हमने ही स्वयं को हाशिए पर डाला है। हमारे ही वे बच्चे हैं, हमारे पड़ोसी जो पाउलो केल्हो, चेतन भगत को तो जानते और पढ़ते हैं मगर प्रेमचंद का नाम ज्यादा से ज्यादा सुना है, पढ़ने का सवाल ही नहीं! इसमें पाउलो केल्हो अंग्रेजी के नहीं, स्पेनिश भाषा के साहित्यकार हैं और हम उनकी अनुदित रचनाएं पढ़ते हैं। वे ख्यात विश्व प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। चेतन भगत इसी देश के हैं और युवाओं को रोचक कहानियां सुनाते हैं।

क्या अपनी भाषा की ऐसी कहानियां, उपन्यास नहीं जिन्हें अनुदित किया जाए और विश्व न सही, अपनी हिन्दी पट्टी ही पढ़े। यह जानें की हिन्दी में लेखन किस स्तर का रहा है। हमारी विरासत क्या रही है ! क्या हमने अपनी विरासत अपने बच्चों को ठीक–ठाक सौंपी है। पाउलो केल्हो या किसी भी महान लेखक से हमें आपत्ति नहीं, पर, हमने स्वयं को हाशिए पर नहीं डाला ? क्या ये सारा मामला अपनी चीजों को अब भी हेय नजर से देखे जाने की वृति और दूसरों की (अंग्रेजी दा लोगों की) चीज में 'सर्वश्रेष्ठ' ढूंढने की गुलाम मानसिकता नही है ? ये वही भारतवर्ष है जहां अंग्रेजी में लिखने वाले उपन्यासकार को करोड़ों की अग्रिम दी जाती है। उन अंग्रेजी उपन्यासकारों को पढ़ने वाले कौन ? वे इसी इंडिया में बसते हैं। यह सारा मामला राष्ट्रीय स्वाभिमान से जुड़ता प्रतीत होता है। हिन्दी, हिन्दी पट्टी, गंवारपन, गरीबी, पिछड़ापन, एक–दूसरे के प्रति घोर ईर्ष्या, मक्कारी, कपट! बस यही दृश्य दिखता है!

क्या सचमुच यहां दो आवाम बसते हैं — एक भारत दूसरा इंडिया ?

अगर हमें अपनी चुनौतियां स्वीकार हैं तो हमें सवालों से टकाराना होगा। भूल जाइए कि हमारा गौरव, हमारा हक़, हमारी कमियां, हमारी मक्कारियां बताने कोई जर्मन विद्वान बाहर से आएगा। बाहर से आनेवाला आ रहा है — कई कैटरिनाएं आयातित हो रहीं हैं— वे हमारे ही दम पर हमारा खा रही हैं। आज भारत की आवाम चीन, जापान, अमेरिका और तमाम यूरोपीय कंपनियों के लिए एक अच्छा बाजार हैं। हमने अपने बल पर उन्हे टिका रखा है। मगर हम दरिद्र क्यों!

कौन न्याय दिलाएगा......।

सवाल कई हैं और जवाब हम सब को मिलकर देना है।

फिलहाल, यदि आवाम बोलती, पढ़ती समझती तो मातृभाषा है, पर वह एकेडमिक भाषा अर्थात् अंग्रेजी में साहित्य पढ़ती है, अर्थात् अंग्रेजी में अनुदित साहित्य पढ़ती है तो साफ है वह पाठक वर्ग साहित्य के वास्तविक आनंद से कोसों दूर है। आप कुछ और हो जाएं मगर साहित्य के रसिक नहीं हो सकते। अच्छी किताबें पढ़ने का मिथ्या अभिमान आपने पाल रखा है।

क्यों ? ऐसा हमने क्यों कहा ?

सवाल भाषा, परम्परा और संस्कृति का है। क्या भगत या मैल्कम या प्रचंडानंद या कोई मिस्टर जैक्शन इस संवाद का अंग्रेजी या अपनी भाषा में अनुवाद कर सकते हैं ? गौर फरमाइए :—

''क्या समझा है रे ससुरे हमको.....! देंगे पछवाड़ि तेरह आ गिनेंगे तीन.....।''— मिसिर पहलवान अपना मोछं ठनकाए।

''वह वक्त हमारे दादाजी की तेरहवीं का था और हम सभी सगें—सम्बंधी अपना बत्तीसी झलका रहे थे, मानों मृत्यु का जश्न मना रहे हों!''

उसी तरह जब कोई लिखता है कि घसिया को पता है अपनी टंगिया की धार कब तेज करनी है तो वह बहुत कुछ कह देता है। जिसका किसी भी भाषा में अनुवाद असंभव सा है!

साहित्य का अर्थ ही अपनी मिट्टी है, अपनी वाणी है, अपनी परंपरा, बोली और संस्कृति है।

वे लाखों में पढ़ी जाने वाली अनुदित रचनाएं क्या मिट्टी से जुड़ी हैं ? हमारे संस्कार, परम्पराओं के करीब हैं? अन्य भाषा में रिसर्च, विचार, कथ्य या कहानी जाना जा सकता है, साहित्य का रसिक नहीं हुआ जा सकता। आप चाहे तो इसे वेद मान लें। एक अटल सत्य!

अफसोस! हिन्दी की मुख्यधारा साहित्य ने दूसरों के विचार आयात किये और दूसरों के 'स्किल', 'टेकनीक' चुराकर यहां ऐसे पौधे रोपने का प्रयास किया जो हमारे सर्वथा प्रतिकूल रहा। हिन्दी में लिखते हुए हम हिन्दी की मिट्टी—संस्कृति के पोषक न बन सके।

बाहरी पौधे तो उपजा न सके, देशज चीजों को भी भारी क्षति पहुंचाई।

'बस्तर पाति' लोक जीवन, लोक संस्कृति, यहां की मिट्टी और गंध ा, यहीं की कहानी और यहीं की कविता यहां के लोगों को समर्पित करना चाहती है। हमने 'बस्तर पाति' के प्रवेशांक में ही 'लोक' शब्द की जिस महिमा से अपना उद्देश्य प्रस्तुत किया है— उसका विस्तार यही है। हम लोक और अपनी प्रकृति की ओर लौटने को विवश हैं— क्या आप एक कदम और हमारे साथ चलना चाहेंगे ?

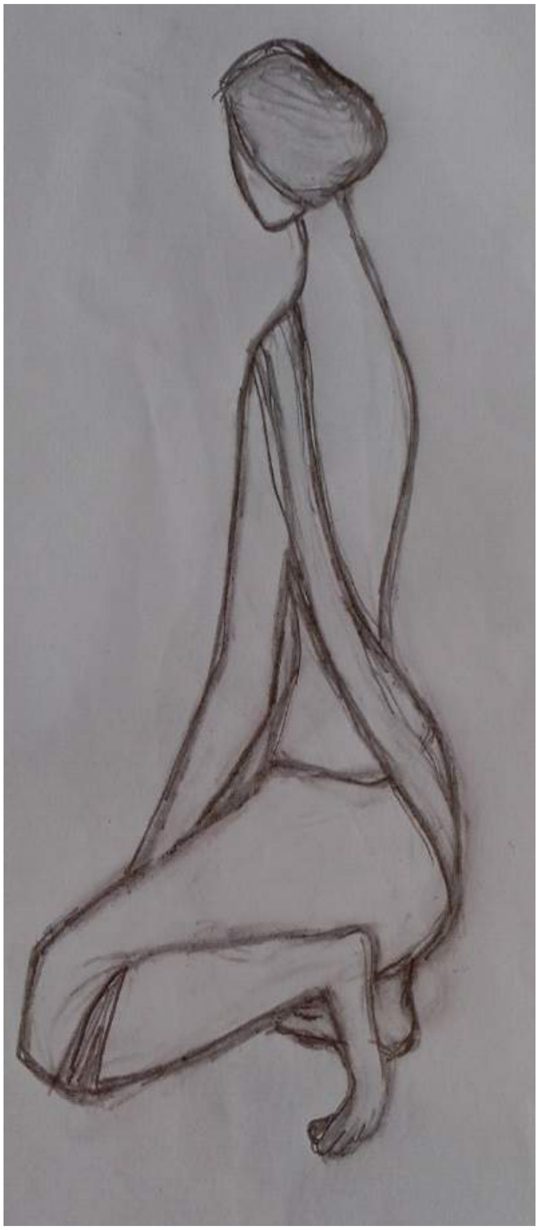

पाठकों से दूरी: प्रकाशक व लेखक के बीच नये रिश्ते

बदलता समय, विद्वानों द्वारा अपने समय को पढ़ने और पकड़ने में हुई चूक ने लेखकों और प्रकाशकों के बीच एक सर्वथा नवीन सम्बंध लेकर आया ।

वह एक दौर था जब प्रतिभाशाली लेखकों की पहचान देश के प्रमुख पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते ही हो जाती थी। प्रकाशक और संपादक अच्छे लेखक की शिनाख्त ही नहीं करते थे, उन्हें हर संभव बढ़ावा भी देते थे। प्रकाशक स्वयं स्थापित (चर्चित नहीं) लेखकों के दरवाजे खटखटाता था। संभव है आज भी वे किसी का दरवाजा पीट रहे हों, पर बात वो नहीं जो पहले थी।

सत्तर–अस्सी के आस–पास अ–कहानी नामक दौर ने साहित्य में 'अ' ही 'अ' बिछा दिया। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि समुद्र पार के आकर्षण ने कुछ लेखकों को, आलोचकों को, संपादकों को 'महान' बनाया हो मगर पाठक ? इस डार्विनियन और फ्रायड के मनोविश्लेषण ने अ–कहानी को अ–पाठक अच्छे से बनाया। कहानियों में जहां भी डंठल दिखा कि वह शिश्न का प्रतीक माना गया और जहां कहीं विवर या छिद्र कि वह स्त्री योनी! अतः कहानियां जहां देखो वहां 'कील' पर 'छाते' की तरह लटक गयी! चमगादड़ की तरह! सबकुछ उल्टा हो गया बहरहाल, पाठकों को गोबर मान लिया गया और हिन्दी लेखकों ने समझा उन्हें जर्मनी और जापान समझ लेंगे। इस टेकनीक ने एक और फैशन चलाया देवानंद वाली ज्वेल थीफ की टोपी जैसी कहानी। आदि मध्य या अंत का मेल नहीं 'स्लाइस ऑफ लाइफ' भी (उनके अनुसार 'ही') हो सकता है। माननीय पाठकों ने इनके 'स्लाइस' पर ना नमक छिड़का ना चीनी! (कम से कम हमारी जमीन के लिए बस्तर पाति ऐसी कथा टेकनीक को बकवास मानता है और कथा टेकनीक के लिए अपने मिथकों, लोक कथाओं की ओर दौड़ता है– जिस पर हम बार–बार यहां आपसे विमर्श करेंगे।)

इस तरह जब प्रकाशन जगत को यकीन हो गया कि यहां किताबें बिकने से रहीं, तो धीरे से स्वयं के भार वाली सोच ने प्रकाशक और लेखक के रिश्ते को ही बदल डाला! अब क्या मंजे हुए लेखक और क्या नये खिलाड़ी। या फिर साहित्य में अपना नाम 'दर्ज' करवाने वाले महावीर! इन महावीरों ने धीरे से छपाई वगैरह का खर्च प्रकाशकों को देकर अपने ग्रंथ प्रकाशित करवाए। इनमें ज्यादातर वे लोग थे जो पहुंच वाले थे, हिन्दी विभाग से जुड़े लोग थे– स्वघोषित् विद्वान, आलोचक! इनका वर्चस्व भी खूब था, ये किसी न किसी महत्वपूर्ण पद पर अवश्य पदासीन लोग थे। इनके चेले साहित्य जगत में अपना नाम कमा सकते थे तो वे क्यों नहीं!

प्रकाशक ने कहा वाह! ना खर्च ना झंझट! महावीर की पुस्तक छपवाओं, सौ–दो सौ महावीर के प्रताप से पुस्तक लायब्रेरी की ठंडी हवा भी खाएंगी, प्रकाशन का खर्च हासिल, पाठक पुस्तक खरीदे ना खरीदे उनका लाभ तो हो गया! बदले में बीस–पच्चीस किताबें प्राप्त कर (लेखक महोदय की 'रायल्टी') लेखक जी पुस्तक का 'वितरण' करने लगे। लेखक के प्रताप से उनके चेलों ने दस गुना अधिक मूल्य वाली हार्ड बाउंड पुस्तक खरीदी की तो इसका सीधा लाभ प्रकाशक को–बोनस! क्योंकि लेखक जी प्रकाशक महोदय से अपनी रायल्टी का जिक्र भी नहीं करना चाहते! किस मुंह से मांगे, उनकी किताब जो निकली है!

इस बदलते समीकरण ने उन 'महत्वकांक्षी' लेखकों की कतार बिछा दी। पाठक तो पहले से कराह रहा था, लो, अब नमक, मिर्च–प्याज का मजा अलग लो। (अर्थात् खूब आंसू बहाओ)

बहुत जल्द प्रकाशकों का यह दर्शन स्थापित हो गया अधिक से अधिक लेखकों की किताबें और काम चलाऊ (सच में बिल्कुल चलाऊ नहीं) वितरण। पहले यह कुछ और था– कम लेखकों की किताबें मगर खूब सारा वितरण।

अर्थात् पहले जहां पांच लेखकों की किताबें पांच हजार प्रकाशित और वितरित होती थी वहां अब पचास लेखक हो गये और प्रकाशक/वितरण वही पांच हजार ही मान लीजिए।

हिसाब–किताब साफ है, प्रकाशक का पॉकिट सुरक्षित है। सारे रिस्क से बे–खबर! पहले तो उसे तमाम तरह के झंझट उठाने पड़ते थे, वितरण, कलेक्शन, संपादन, प्रूफ रीडिंग, बेचना, प्रचार इत्यादि। अब वह संसार के सारे जंजाल से मुक्त है–पता नहीं किस बोधिसत्व ने उन्हें ये मंत्र दिया! ऐसा एक छलांग में बजरंगबली वाला 'मोक्ष' हिन्दी प्रकाशक नामक 'जीव' को ही नसीब हुआ। 'बस्तर पाति' के प्रिय पाठकों! ऐसा हमने ही किया। किसी और ने नहीं।

हिन्दी के कुछ अग्रज बड़े प्रकाशक अपने सलाना रॉयल्टी का हिसाब जरूर बताते हैं और अपना व्यापार लाखों में।

मगर वे ये नहीं बताते कि अमुक लेखक की कितनी किताबें वे सालाना छापते हैं और कितना लाइब्रेरियों और गोदामों में झोंकते हैं। वास्तव में क्या इन बड़े हिन्दी प्रकाशकों के आम पाठक हैं ? अथवा इनकी पहुंच हिन्दी पट्टी के साधारण लोगों तक है ? पुस्तक प्रकाशक का अर्थ पुस्तक वितरण से होना चाहिए था, प्रकाशन जगत को नये—नये क्षेत्रों में घुसकर आर्थिक रिस्क लेकर युवा और ग्रामीणों के लिए एक पुस्तक संस्कृति जो बनानी थी। युवा वर्ग, प्रौढ़ और वृद्धों—बच्चों, महिला केन्द्रित पुस्तकें आनी थी वह हमने नहीं किया! आज प्रकाशन का बहुत ही सीमित अर्थ रह गया है— रंगीन कवर पेज के साथ स्टेपल की हुई जेरोक्स प्रति! हम अपनों को यही बांट रहे हैं— अपने मित्रों को, रिश्तेदारों को। हां, वहां किसी दिल्ली या मेरठ के प्रकाशक का नाम छपा जरूर मिलेगा।

दोस्तों! कहां पाठक, कहां लेखक!

लोकल बनाम ग्लोबल

इस ग्लोबलाइजेशन के जमाने में हम अपने 'लोक' के साथ चिपके हैं। दुनिया सिमट गयी है। संस्कृतियां एक—दूसरे में मिलघुल रही हैं। भाषा, संस्कृति का प्रवाह पहले से कहीं द्रुत अब हो रहा है। क्या ऐसे में इस 'ग्लोबल विलेज' में 'लोकल गांवो' की बात जायज है ?

बात साहित्य से पाठकों की दूरी पर ही केंद्रित है। हमारी चिंता उन दूर हुए पाठकों को समीप लाने की है। अतः पाठक बिन कारण, किन परिस्थितियों की चलते साहित्य से (हिन्दी) दूर हुआ—इसका विश्लेषण तो जरूरी है ही, किन कारणों से अथवा अब कैसी परिस्थितियां निर्मित हों कि पाठक हिन्दी साहित्य से जुड़े, ये समस्या, या ऐसी समस्याएं अल्पकालीन नहीं होती, इनसे लगातार लेखक, विद्वानों, प्रकाशकों को मुठभेड़ करनी पड़ती हैं क्योंकि संस्कृति का प्रवाह एकरैखिक नहीं, भाषा या संस्कृति कोई स्थायी तत्व नहीं हैं। वे स्थिर दिखते हैं, मगर इनमें भीतरी उथल—पुथल एक सतत् प्रक्रिया है। हमने अपनी आंख बंद की कबूतर की तरह कि अंधेरा हो गया और बिल्ली हम पर नहीं झपटेगी— ऐसा ख्याल आत्मघाती है।

ऊपर का सवाल जायज दिखता है। इतिहास में संस्कृतियों का, भाषा का समागम हुआ है और बदलाव भी। आज जर्मनी या लैटिन अमेरिकन साहित्यिक आंदोलन से हम अपने को किस तरह सुरक्षित रख सकते हैं? खासकर माने हुए विद्वान !

यहां विरोध बाहर की अच्छी बातों के प्रवेश को लेकर नहीं है — कि हमने अपने फाटक और खिड़की बंद कर लिये। मगर हॉ, बिना विचारे अपनी सारी दिवारें गिरा दी— अपना अस्तित्व ही 'लुटा दिया'— विरोध इस बात का है। विरोध विचारों का नहीं विरोध अंधाधुंध विचारों के स्वीकार्य से है। हॉ, हमने नयी कहानी, उपन्यास, लम्बी कहानी, उसी तरह कला के क्षेत्र में बहुत सी चीजें बाहर से ली हैं। आर0डी0बर्मन ने अफ्रीकी देशों से खूब सारे वाद्य और धुनें अपने यहां प्रयोग में लाई थी।

सवाल ये नहीं कि हम किसी मे प्रेरित हो या नहीं सवाल ये है कि प्रेरणा का प्रयोग कितना और क्यों हो, किसके लिये हो, क्या पाठक से दूरी बनाने के लिए ? अंतर्राष्ट्रीय मापकों पर खरे उतरने के चक्कर में अपनी जमीन भूल जाना। वह भी तब, जब हमारे यहां की एक लम्बी परम्परा और सम्पन्न विरासत पहले से मौजूद है। क्या हमने उनका सम्मान किया ? हमने उनकी ओर दृष्टि डाली है ? क्या ग्लोबल कला विरासत, साहित्य या संगीत या नृत्य हमारे लिए किशोर कुमार या लता मंगेशकर का विकल्प दे सकते है ? कोई आस्कर क्या हमारे लिए मदन मोहन या शंकर जयकिशन पैदा कर सकता है? हमारी साहित्यिक धरोहर 'रामायण' या 'महाभारत' और अंतहीन किस्से कहानियों से भरी लोककथाएं, मिथक कथाएं किसी भी पूरब या पश्चिम से आयातित विचार से हमारा विकल्प बन सकती हैं ? चाहे हम हिप—हॉप, लॉकिंग—पॉपिंग, फूटिंग जैसे सर्कसनुमा डांस फार्म पर तालियां पीटें—इससे हमारे यहां के शास्त्रीय नृत्य महत्वहीन नहीं हो जाएंगे।

तकलीफ चीजों के अपनाए जाने से नहीं, तकलीफ चीजों के अपनाए जाने के तरीके से है। और यह सिलसिला रूकता प्रतीत नहीं होता। फिलहाल, इस ग्लोबल और सिकुड़ती दुनिया में 'हम' तभी तक हैं जब हम 'लोकल' हैं। स्थानीयता से सराबोर! यही हमारा अस्तित्व है। यह अस्तित्व हमारे 'स्व' से, हमारे स्वाभिमान से जुड़ा है। हमारी लम्बी सांस्कृतिक विरासत है—कला, साहित्य, संगीत— हर क्षेत्र में! अनचाहे भी हम इनसे दूर नहीं जा सकते मगर जितनी तेजी से हम आगे बढ़ रहे हैं— हमारी परंपराएं हमसे छूटती जा रही हैं। बहुत सारी अच्छी चीजों से दूर———!

क्या आप अब भी सोच रहे हैं कि आपको ठहरना चाहिए या नहीं ?

बस्तर पाति फीचर्स

एक साहित्यिक विमर्श — बूड़बक सिंह राजपूत

दृश्य–एक

प्यारे दर्शकों! यह आधुनिक हिन्दी साहित्य का मंगलाचरण है। आइये देखें–

यह मिस्टर 'क' का आलीशान बंगला है। उनका वेतन लाखों में है। उनका गार्डन हरा–भरा रहता है। सप्ताह में तीन दिन माली इनके बाग की देख–रेख करने आता है। घर में एक नौकर, एक ड्राइवर। इनके घर अंग्रेजी के अखबार आते हैं। इनके बच्चे महंगे पब्लिक स्कूल में पढ़ते हैं। पर ये आपसी संवाद के लिए हिन्दी में बातें करते हैं। हिन्दी फिल्में देखते हैं, हिन्दी सिरियल्स देखते हैं। मगर इनके बुक–सेल्फ में हिन्दी की किताबें नहीं हैं। अलबत्ता अंग्रेजी बेस्ट सेलर किताबों की भरमार है। इन्हें नहीं पता कि हिन्दी में लेखक नामक 'जीव' भी होते हैं और हिन्दी में साहित्यिक पुस्तकें भी प्रकाशित होती हैं। साहित्यिक पत्रिकाएं भी हैं।

मिस्टर 'ख' की कहानी बहुत अलग नहीं है। खाता–पीता घर है। ये हिन्दी का अखबार पढ़ते हैं और हिन्दी साहित्य सम्बंधी इनका सामान्य ज्ञान इतना भर है कि प्रेमचंद के बाद ये किसी को नहीं जानते। हिन्दी में साहित्यिक पुस्तकें/ पत्रिकाएं लिखी व प्रकाशित होती हैं– यह जानकर इन्हे दुनिया का सातवां आश्चर्य होता है।

श्रीमान् 'ग' को सब–कुछ पता है, वे हिन्दी के प्राध्यापक हैं। इनके अच्छे से घर में एक मिनी लायब्रेरी सुशोभित है– हिन्दी में लिखी किताबें भी हैं मगर वे सब 'दान' में मिली हुई हैं। इनकी मजाल जो एक भी खरीदी हो। वे सब–कुछ खरीदते हैं– पान, पानदान, सुपाड़ी और कत्था–खैर सब–कुछ, पीकदान–थूकदान तक मगर बीस रूपए की हिन्दी पत्रिका नहीं! सौ रूपए की किताब का तो सवाल ही नहीं! श्रीमान् 'ग' की तादात् इस हिन्दी पट्टी में बेहिसाब है। ये स्वयं को समीक्षक, आलोचक, लेखक, बौद्धिक, ज्ञानी, महाज्ञानी और कर्मकांडी कहते हैं– मगर मुफ्त की किताबें पढ़ना इनका अधिकार है। ये पुस्तकें पढ़कर लेखकों पर उपकार करते हैं। पढ़कर गरदन ऊँची कर लेखकों को अपनी राय सुनाते हैं। अकसर ये लोग ही हिन्दी में पाठकों का रोना रोते हैं। वे कहते हैं हिन्दी में किताबें नहीं बिकती। लोग पढ़ते नहीं इसलिए खरीदने का सवाल नहीं।

उसी माफिक एक श्रीमान् 'घ' हैं जो हिन्दी साहित्य की किताबें खरीदना चाहते हैं मगर पुस्तकें/पत्रिकाओं का दाम आसमान चढ़ रहा है– इसलिए ये चाहते हुए भी खरीद नहीं पाते। पन्दह रूपए की पत्रिका इन्हें महंगी लगती है, दो सौ रूपये की एक कहानी संग्रह तो वे तब पढ़े जब दहेज में ससुरजी इन्हें उपलब्ध करवायें। इनके हिसाब से पत्रिकाएं मात्र पांच रूपए में और किताबें (150–200पृष्ठवाली) पच्चीस रूपये से अधिक की नहीं होनी चाहिए। ये एक आदर्श सोशलिस्ट हैं– नेहरू लोहिया के जमाने वाले जब फ्री का यूनीफार्म, फ्री का जूता और कोटे का सस्ता शक्कर – गेहूं खाते थे। भला ये महंगाई कहां झेलनेवाले, हालांकि मुंह में दस रूपये वाला सुगंधित पान घुल रहा है – जो एक–आध घंटे में थूक दिया जाएगा।

यह मिस्टर 'ड़' हैं, बेरोजगार। साहित्य पढ़ने का शौक है, बुक स्टॉल पर ही पत्रिकाएं उलट–पुलट कर लेते हैं। एक–दो पत्रिकाएं खरीदना भी इनके लिए एक बड़ी बात है। इनका जेब भरे तो अच्छी किताबों की भरमार लगा दें।

हिन्दी के लेखक भी खूब पढ़ते हैं– खासकर तब जब इनका पड़ोसी लेखक, मित्र लेखक या लेखिका की नयी किताब निकली हो। तब चोरी से पुस्तक प्राप्त करेंगे और इस भाव से पढ़ेंगे कि देखें किसने क्या लिखा है। यदि इनके प्रतिद्वन्दी ने कुछ अच्छा लिखा है तो वे चुप रह जाएंगे। इनका मुंह तब खुलेगा जब इनकी दृष्टि में रचना 'कमजोर' हो।

क्या आप इन्हे हिन्दी का पाठक होना स्वीकार करेंगे ? वो पाठक जिसे आम पाठक कहा जाता है और ज्यादातर गुप्त रहता है। हिन्दी साहित्यिक पुस्तकों का एक और पाठक होता है– इसे हिन्दी साहित्यिक गोदाम कहते हैं जहां साहित्यिक एजेंट प्रकाशकों से मिली–भगत कर पुस्तकों के छल्ले बिछाते हैं। बोरी की बोरी! इन सुगंधित पृष्ठों को बाद में दीमक बड़े चाव से पढ़ते हैं। इनकी तादात आज के समय सबसे अच्छी है और ये प्रकाशकों/आलोचकों/ (शायद इस कड़ी में लेखक शामिल नहीं है, वह पुस्तक प्रकाशित कराकर ही खुश है।) एजेंटो का खूब भला करती हैं।

दृश्य –दो

परदा धीरे–धीरे उठता है। कुछ महाशय बैठे हैं। इस तरह बैठे हैं मानो कुर्सी तोड़ देना चाहते हों। बीच में एक बड़ा मेज है जिस पर कलम दवात रखी गयी है। और कुछ हांडीनुमा बर्तन में तरल पदार्थ सा कुछ। मेज के बीचो–बीच एक बूढ़ा धोती धारी, मलमल के कुरते में सजा–धजा है। वह पान चबा रहा है। जब उसे थूकना होता है तो अपने पछवाड़े इशारा करता

है– एक सेविका थूकदान लेकर प्रतीक्षारत है। अगल–बगल मोटे और छोटे चश्माधारी, सूट–बनियानधारी, कोट–टाईधारी, सिगार–सिगरेटधारी, महान कलमधारी लोग हैं। ये जो बाई और बैठे हैं ये हैं जनाब द्रोणाचार्य, जिन्होंने साहित्य का एक भी अर्जुन निर्माण किया नहीं मगर कई बिना अंगूठा वाले एकलव्यों का निर्माण किया है। साहित्यिक घी पीने में इनकी बराबरी नहीं। इस वक्त भी ये अपनी मजबूत जंघाओं में तेल पिजा रहे हैं। बगल में कृपाचार्य जी हैं– इनकी तेल मालिश में सहयोगी। ठीक सामने साहित्यिक सम्राट धृतराष्ट्र हैं जो अब भी मोटे लाल ग्रंथों में कुछ खोज रहे है। इन्हे सब–कुछ दिखाई–सुनाई पड़ता है। इन्हें संजय की आवश्यकता नहीं। ये स्वयं सब–कुछ देख लेते हैं। इन महारथियों के अतिरिक्त कुछ और अर्द्धरथि, रथि मौजूद हैं, मगर कुछ हटकर। कोई चप्पल में तो कोई बिना जूता। सब पता नहीं क्या ढूंढ रहे हैं। कोई किसी को देख नहीं रहा है। सभी स्वयं में खोए हैं। गलती से अगर इनकी निगाहें टकरा जाती हैं तो तत्काल ये अपनी आंखे चुरा लेते हैं। मानो कुछ देखा ही नहीं।

तभी द्रोणाचार्य अपनी कुर्सी से उठते हैं और पूरा का पूरा साहित्यिक घी पी जाते हैं। जोर की डकार लेते हैं। उसी वक्त कुछ साहित्यिक विद्यार्थियों का प्रवेश होता है– वे सब बीच में बैठे भीष्म पितामह के चरण छूते हैं। विद्यार्थी उनके पांव को सामने मेज पर फैला देता हैं, चरणों की धूलि अपने सर पर लगाता है। पांव दबाता है, बारी–बारी ये सभी ऐसा करते हैं। ये सभी साहित्य के महापांडव हैं। उधर युवा कर्ण को दरवाजे पर ही रोक दिया जाता है। उसके हाथ में फटी पुरानी पांडुलिपि है जिसे वह भीष्म पितामह को भेंट देना चाहता है। तभी एक शिष्य पोस्टर बिछाता है– ''साहित्य के जरिए क्रांति'' भीष्म पितामह उठ खड़े होते हैं– अब समय आ गया है कि साहित्य के जरिए समाज में क्रांति लाई जाए। आप सब लोग अपना विचार रखें।

सभी अपने साथ लाए पोथी में डूब जाते हैं। सब कुछ न कुछ ढूंढने लगते हैं।

एक महाशय चश्मा चढ़ाकर अपने साथ लाए ग्रंथ पितामह की ओर बढ़ाते हैं – ''इसे शिष्या सुन्दरी ने लिखा है। मात्र 22 की है। सात कहानियों का संग्रह। एक–एक कहानी सात दिशाओं को हिलाकर रख देंगी।''

''अबे हट! तू फटीचर यहां कहां–––! ''– एक महाशय साक्षात् अपनी शिष्या को आगे करते हैं– ''इसे देखिए। इसने वो लिखा है जो अब–तक किसी ने सोचा भी नहीं––––।''

''बस––––बस! हम सब समझते हैं।''– कृपाचार्य को डर है कि उनका विश्वविद्यालय पिछड़ न जाए। तभी द्रोणाचार्य जोर की डकार लेते है। आज उन्होंने खूब साहित्यिक घी पीया है। फिर जांघो को ठोकतें हैं। मगर कुछ कहते नहीं। विद्वानों के बीच झूमा–झटकी होती है। मेज पर रखी दवात की स्याही गिर जाती है। भीष्म पितामह तत्काल स्याही अपनी धोती से पोंछ डालते हैं। नाराजगी से कहते हैं– ''सत्यानाश! लैटिन अमेरिकन और वेस्टर्न टेकनीक से बनी अति आधुनिक स्याही थी। सत्यानाश हो गया!'' सभी विद्वान हाय! हाय! करने लगते हैं– प्रायश्चित स्वरूप पितामह की धोती पर झपट पड़ते हैं और गीली स्याही अपने–अपने बदन पर, चेहरे पर लगाते हैं। इस बीच पितामह की धोती खुल जाती है। सभी ताली बजाते हैं। पितामह नाराज होते हैं पर फिर बच्चों का क्षमा कर देते हैं।

थोड़ी देर में पितामह के समक्ष लेखनी का अम्बार लग जाता है। तभी एक अत्याधुनिक विद्वान को ख्याल आता है कि अरे! हमने तो इस महा–संघर्ष, महा–विवाद, महा–विमर्श में पाठकों की भागीदारी तो बनायी ही नहीं।

सभी चौंक पड़ते हैं। हां पाठक कहां है। पाठक कहां गया––––! मिस्टर पाठक–––? तुम कहां हो–––?

'मिस्टर पाठक को तलब किया जाए।' पितामह आदेश देते हैं।

शीघ्र ही दरवाजे से एक थुल–थुल, टकला, मोटे पेट वाला जिसके पेट पर एक खुली किताब है– महापांडव चारपाई पर श्रीमान् पाठक को उठा लाते हैं। पाठक जी जोर–जोर से खर्राटे ले रहे हैं। यह वो कुम्भकर्ण है जो कभी उठता नहीं।

'इसे उठाओ।'– आदेश होता है। शिष्य–शिष्या लाख प्रक्रम करते हैं–अपने लिखे ग्रंथ पढ़–पढ़कर सुनाते हैं मगर पाठक अचेत हैं। खर्राटे से मंच संगीतमय है। सब थक जाते हैं तब पितामह एलान करते हैं– 'रचयिता और रचना में क्या फर्क होता है ? ज्ञाता और ज्ञेय में क्या भेद ? लेखक ही पाठक है। अतः विमर्श आगे बढ़ाया जाए।'

सभी वाह! वाह! कर उठते हैं। क्या बात! क्या बात! बिल्कुल बजा फरमाया साहेब ने!

'हां तो हम कहां थे......! साहित्यिक क्रांति! समाज में क्रांति!

विमर्श प्रारंभ हुआ। जिसके पास चप्पल था वह अपनी दोनों चप्पलें निकालकर फेंक मारा। सामने वाले ने इसका जवाब जूते से दिया। एक ने दूसरे की कमीज फाड़ी तो दूसरे ने तीसरे की धोती ढीली कर दी। कई तो दूसरे का लंगोट ही खोलने पर आमादा हो गये। अलकिस्सा ये कि खूब जमकर महाभारत हुआ। जब सब थक गये तो रिलैक्स होने के लिए किसी ने पान की गिलोरी मुंह में दबायी, कोई सिगार का धुंआ मुंह से फेंका, कोई तम्बाकू मलने लगा तो कोई सुरती नाक से पीने लगा। कोई किसी की ओर अब न देखते थे। सब एक बार फिर अपने–अपने में हो गये। पोथियां फट–फूटा गयीं। श्रीमान् पाठक अब भी छाती पर पुस्तक खोले खर्राटा मार रहा था। जब थोड़ी उर्जा मिल गयी तो एक युवा प्रबुद्ध जो स्वयं घोषित महाप्रबुद्ध और महाक्रांतिकारी था, अपने सामने सफेद बालों वाले ज्ञानी से पूछता है– 'हमने विमर्श तो बहुत किया, अब थोड़ा परिचय हो जाए। श्रीमान् आप कौन ? कहां से आएं हैं ? आप क्या हैं ?'

बुजुर्ग ज्ञानी नाराजगी से कहते हैं – 'जानते नहीं हमारा नाम! दो दर्जन ग्रथों के रचयिता। मैं हूॅ ओम स्वामी जी महाराज...... ।'

'क्या। कौन स्वामी जी बजेराज––––!' वह जानबूझकर नाम बिगाड़कर सम्बोधित करता है। ओम स्वामी जी गुस्से में चप्पल उठाते हैं। फिर से हंगामा शुरू होना चाहता है। तभी एक मनमोहिनी सबका ध्यान आकर्षित करती है। सबका ध्यान उसकी पोथी में नहीं, साक्षात् उसी पर टिक जाता है। युवा उत्सुकता से देखते हैं। प्रौढ़ चश्मे के भीतर से तो बूढ़े विद्वान सबके सामने अपनी धोती ढीली करने लग जाते हैं। सबकी एक ही कामना है कि जैसे भी, सुन्दरी उन्हीं की गोद में आकर शरण ले। पर सुन्दरी बड़ी चालाकी से बारी–बारी से सबके पास जाती भी है और छकाती भी है। वह सबकी होती भी है नहीं भी होती। हां और ना की अद्भूत मिसाल पेश करती है। वह किसी कलाकार की सधी रचना की तरह आधी हकीकत आधा अफ़साना नजर आती है।

सुन्दरी को लेकर आपस में भिड़ंत होती है। हालांकि ग्रंथ अब भी उसके हाथ में है।

एक सज्जन जो सुन्दरी के करीब होने का जबरन प्रयास करते हैं– सामने वाले महापंडित ललकारते हैं– 'खबरदार! तुम लाल हरा वाले हो, दूर रहो। सटे कि मरे। तुम्हारा मिडिल काट लूंगा।'

उनकी दाद देते हुए उनके चमचे उनका कंधा सहलाते हैं– 'हुजुर का प्रताप! आपकी महिमा, ये चाहें तो सबके सामने तुम्हारी ले लें–––!

खूब ठहाका लगता है। गुस्से में लाल रंग वाली पुस्तक को बंदूक की तरह तान देते हैं– 'जानते हो बेवकूफों मैं कौन ? मेरा सटा कि तुम लोगों का फटा––––। समझे––––?'

तभी सुन्दरी नेपथ्य से धीरे–धीरे बाहर होती है। कई विद्वान साहित्यिक विमर्श छोड़ उसके पीछे भागते हैं –'देवी जी! अपनी पोथी तो हवाले करती जाओ! हम सब किसके सहारे जीएंगे.........!' वे रोने–चिल्लाने लगते हैं। एक रसिक विद्वान तो गम खाकर हिन्दी क्लासिकल गीत गाने लगते हैं– 'याद किया दिल ने कहां हो तुम..... झूमती बहार है कहां हो तुम..... ।'– तभी पाठक जी सपने में ही गाने का डूएट पूरा करते हैं– 'प्यार से पुकार लो जहां हो तुम..... ।'....सभी चौंक पड़ते हैं।

तभी दरवाजे से खून की धार बहते दिखी। सभी सतर्क हो गये। लोग चीखे– 'क्रांति! क्रांति! हमारे विमर्श से क्रांति हो गयी। वो देखो.... ....रक्त की धार......... ।'

सब खुशी से पगला गये। क्रांति सफल रही....!

तभी द्रोणाचार्य उठकर कहते हैं– ''तुम सब बूढ़बक हो। ई क्रांति का रक्त नहीं है, ई रक्त है हमारे एकलव्यों का..........अनगिनत अंगूठे काटने का रिकार्ड बनाया है हमारे साहित्यिक विश्वविद्यालय ने, समझे.... .... फिर वे रक्त से अपने माथे पर तिलक लगाते हैं। उनकी देखा–देखी सभी ऐसा करने लगते हैं।

सब नेपथ्य से बाहर चले जाते है...........सिर्फ कर्ण अपनी पांडुलिपि लिये इधर–उधर घूमता नजर आता है। पाठक अब भी सो रहा है। परदा धीरे धीरे गिरता है।

श्रीमती मोहिनी ठाकुर

बस्तर क्षेत्र की उपजाऊ मिट्टी की खासीयत यह भी है कि इसने साहित्य के भी चुनिन्दे फल उगाये हैं। वर्तमान साहित्य के लिखित इतिहास या यूं कहें कि प्रकाशन कला के विकसित होने के साथ ही साथ बस्तर क्षेत्र ने अपनी उपस्थिति दर्शा दी। बीसवीं सदी की शुरूआत ने ही इतिहास के रूप साहित्य गढ़ना शुरू कर दिया। उन्हीं साहित्यकारों की कड़ी में श्रीमती मोहिनी ठाकुर का नाम भी शामिल है। अपने नाम के अनुरूप ही उनकी क्षणिकायें और कवितायें हैं जो बरबस ही अपनी विशिष्ट शैली के चलते ध्यान खींच लेती हैं। उनकी कहानियों में समाया जीवन अपनी उपस्थिति छोड़ ही जाता है। आइये उनसे बात करके जाने कि वे साहित्य के संबंध क्या सोच रखती हैं।

सनत जैन–आज के परिवेश मे साहित्य का क्या स्थान है ?

श्रीमती मोहिनी ठाकुर–साहित्य हमेशा ही समाज का दर्पण रहा है और उसका ध्येय भी यही रहता है समाज को उसके वास्तविक रूप से रू–ब–रू कराना। राजा रजवाड़ों के समय श्रृंगार रस और वीर रस पर अधिक रचनायें रची गई। आजादी के आंदोलन में देश प्रेम से ओत प्रोत कवितायें लिखी गई। और वर्तमान में जिन समस्याओं से समाज, देश जूझ रहा है उन्हीं ज्वलंत विषयों पर लिखा भी जा रहा है। सभी उन्हीं विषयों पर पढ़ना या सुनना पसंद करते हैं। जिंदगी की जद्दोजहद से लोग त्रस्त हैं, परेशान हैं और उन पर कहानियां लिखी जाती है; कवितायें लिखी जाती हैं तो आम आदमी बड़ी राहत महसूस करता है कि उसकी तकलीफों को भी बयाँ करने वाला कोई है तो सही!

सनत जैन–आपकी प्रिय विधा कौन सी है और क्यों ?

श्रीमती मोहिनी ठाकुर–वैसे तो लेखन से जुड़ी सभी विधायें प्रिय हैं कहानी, व्यंग्य, कवितायें तो हैं ही इनके अलावा मुझे क्षणिकायें लिखना बहुत पसंद है। कॉलेज के दिनो से 'कादंबिनी' मेरी प्रिय पत्रिका रही है। उसमें डॉ. सरोजनी प्रीतम की क्षणिकायें बड़ी प्रभावित करती थीं उन्ही से प्रेरित होकर मैंने क्षणिकायें लिखनी शुरू की। कम शब्दों में बड़ी बात कहने को मैंने चुनौती के रूप में लिया फिर उसमें मजा भी आने लगा। आज की तेज रफ्तार जिंदगी में जब हर एक के पास समय की कमी रहती है, पढ़ने में सुनने में तो क्षणिकायें बड़ी सटीक विधा लगती है। लघुकथायें अधिक प्रचलित हो रही हैं। जिस बिंदु पर लंबी कहानी लिखी जाती है उसी पर 10 पंक्तियों की लघुकथा भी लिखी जा सकती हैं। मेरे ख्याल से संक्षिप्त में जो बात कही जाती है वह अधिक पैनी होती है, विस्तार में वह अपनी धार खो देती है। अब हाइकू के प्रति लोगों का रूझान बढ़ा है यह भी एक स्वागत योग्य विधा है और यह काफी लोकप्रिय हो रही है।

सनत जैन– सम्मान और पुरस्कार प्रतिभा को प्रमाणित करते हैं या नहीं ?

श्रीमती मोहिनी ठाकुर–जहां तक मेरा मानना है कि कोई भी प्रतिभा चाहे साहित्यिक हो या कोई अन्य, किसी सम्मान या पुरस्कार की मोहताज़ नही होती। कोई भी कलाकार या साहित्यकार अपने सृजन में ही डूबा रहता है उसे उसका प्रतिफल मिले या न मिले। उसका लक्ष्य भी सम्मान या पुरस्कार पाना नहीं होता, ये अलग बात है कि सम्मान और पुरस्कार से उसका आत्मविश्वास तो बढ़ता ही है उसका सृजन और परिस्कृत होता जाता है कुंदन की तरह उसकी प्रतिभा निखर ही जाती है।

सनत जैन– बस्तर में साहित्य सृजन की क्या स्थिति है ?

श्रीमती मोहिनी ठाकुर–बस्तर में साहित्यिक प्रतिभाओं की कमी नही हैं। शानी ने बस्तर को पहचान दी है। लाला जगदलपुरी तो बस्तर का गर्व हैं उनका नाम बस्तर के साथ जुड़ा है तो बस्तर गौरवान्वित है। वर्तमान मे रऊ़फ परवेज़ ग़ज़ल के जैसे पर्याय है बड़ी रवानगी है उनके गीत ग़ज़लों में। वरिष्ठ कवियों में हुकुम चंद अंचिन्त्य जी का जाना पहचाना नाम है, छत्तीसगढ़ी की मिठास उनकी कविताओं की विशेषता है। कृष्ण कांत झा शिक्षाविद है; कवि, उपन्यासकार कहानीकार हैं, बस्तर पर आधारित उनकी कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। बस्तर की पहचान बनाने में नये कवियों का उल्लेख भी आवश्यक है शरदचंद्र गौड़ की रचना 'प्यासी इंद्रावती' की दिल्ली पुस्तक मेले में चर्चा हुई जिससे दिग्गज साहित्यकारों का ध्यान बस्तर की ओर आकर्षित हुआ। इसी श्रृंखला मे एक और पहल पिछले दिनो सनत जैन द्वारा त्रैमासिक **'बस्तर पाति'** का लोकार्पण करके की गई जो सराहनीय है इस तरह के प्रयासों की बड़ी आवश्यकता है। एक टापू की तरह बिल्कुल अलग अलग पड़े बस्तर को अन्य प्रदेशों से जोड़े रखने में महत्वपूर्ण योगदान पत्रिकाओं का ही है। विडंबना तो यह है कि विदेशी पर्यटक बस्तर भ्रमण करके यहाँ की संस्कृति, खूबसूरती, कलाकृतियाँ सहेज कर साथ लिये चले जाते हैं लेकिन हमारे ही देश में कई प्रांतो में बस्तर के प्रति बेरूखी है, यह उपेक्षा मन मे बड़ा क्षोभ भर देती है, पीड़ा देती है, जब तक हर साहित्यकार अपने इस नैतिक

दायित्व के प्रति कटिबद्ध होकर, लेखन में निज पीड़ा से हटकर बस्तर के वास्तविक स्वरूप को चित्रित नही करना उसका लेखन सार्थक नहीं हो सकता।

सनत जैन– हिन्दी साहित्य से आपका जुड़ाव कब और कैसे हुआ?

श्रीमती मोहिनी ठाकुर–हिन्दी से मेरा जुड़ाव तो शुरू से ही रहा है जब 'साहित्य' शब्द का मतलब भी नहीं समझती थी हिन्दी प्रिय विषय था और इसमें सर्वाधिक अंक मिलते थे। संयोग से स्नातक के बाद महाविद्यालय में हिन्दी स्नातकोत्तर कक्षा के पहले वर्ष में हमारा ही बैच था। सागर यूनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग के एच.ओ.डी. डॉ. भवानी प्रसाद मिश्र उद्घाटन के लिए आये थे। हिन्दी के चारों खंड में से मुझे 'पद्य' खंड बड़ा अच्छा लगता था। छायावादी कवियों की रचनायें मुझे अभिभूत कर जाती थीं। सुमित्रानंदन पंत, निराला, महादेवी वर्मा की कविताओं में मानवीकरण मुझे भाता था कि उसमें वर्णित भाव सजीव हो उठते थे। 'संध्या सुंदरी' और निराला जी की 'गुलाब' पर मार्क्सवादी कविता सब क्या कमाल की थीं! मैथिलीशरण गुप्त की पंचवटी तो अब तक याद करते ही सारे दृश्य मानस पटल पर स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। शायद उन सब को पढ़ते हुए उन्हीं दिनो कविता का कोई बीज मन में अंकुरित होने लगा था जो बाद में बस्तर आने के बाद यहां पर्याप्त खाद पानी मिलने के कारण धीरे–धीरे पल्लवित होता गया। बस्तर में यहां प्रकृति के निकट आने पर उसके सौन्दर्य ने मन के कवि को मुखरित करना शुरू कर दिया। यहां का ठण्डा–ठण्डा, भीगा–भीगा मौसम गाहे–बगाहे मन को भी भिगोकर चला जाता।

'सुबह हुई खुशनुमा, मीठी सी रात हुई।
घर बैठे भीगा मन, जब भी बरसात हुई।।'

इसी तरह कविता का झरना अंतर में निरंतर अपनी गति से बहता चला गया।

अपने संदेश में उन्होंने क्षेत्र के नये साहित्यकारों को शुभकामनायें देते हुए कहा कि हमारी रचनाओं में कुछ नयापन होना चाहिए, कुछ तो विशिष्ट होना चाहिए जो स्वयं के साथ–साथ अन्य को भी आकर्षित करे।

श्रीमती मोहिनी जी ने अपने साथ हुई बातचीत में अपनी नवीनतम कवितायें भी सुनायीं।

(1)

दिन को बना लिया बिछौना,
रात ओढ़ ली
अब चांद निकलने की,
हमने आस छोड़ दी,
बादलो का कारवां, यहां वहां,
भटकता रहा, रात भर जाने कहां–
उंघते सितारों को
हमने कहा– जगाकर
आओ बात कर ले
संग बैठ लें दो घड़ी
बिखरे हुए तमाम,
लम्हे समेट कर
हमने भी एक दास्तां बुनी
ख्वाबों मे एक ख़्वाब जड़ा
इक और कड़ी ख्वाब की
उसमें जोड़ दी.........

(2)

जुनून जुगनुओं का है–
काबिले–तारीफ
जरा गौर से देखें
कतरा – कतरा
नूर जमा करते फिरते हैं –
रातभर
सियाही का समंदर,
भरने के लिए......

(3)

उदासियो के फूल

पानी के रेले से –
बह जाते हैं सारे दुख,
आँसुओं के साथ–साथ
दर्द, किंतु जमा रहता है
मन के किनारो पर
गीली मिट्टी की तरह –
तब जाकर कहीं,
बाद में, खिलते है उनमें –
उदासियों के,
महकते हुए, खूबसूरत फूल..........

(4)

यादों के अक्स

तरंगे उठने लगी हैं,
मन के शांत, ठहरे हुए पानी में–
हलचल सी भी हुई पानी में –
तुमने जो फेंका है –
संवाद का एक अदद कंकर उसमें,
लफ़्ज़ों के दायरे पर दायरे –
बनते चले जा रहे हैं,
तुम उनमें डूबकर तो देखो
कितने जवाब उभर आयेंगे,
उनमें – अपने आप
और कितने प्रतिबिंब, यादों के –
समा जायेंगे
थरथराते पानी में चुपचाप...........

धरोहर

इस बार शिफ्ट होकर हम जिस नये मकान में रहने आये वह शहर से कुछ अलग हट कर था घर के आसपास खाली जमीन पड़ी थी, कुछेक जगह कब्जे के तौर पर लोगों ने अपनी जमीन पर घेराबंदी कर छोड़ रखा था, यहाँ हवा काफी खुली–खुली थी, एक अनोखी शांति थी, चारो तरफ। बालकनी पर बैठे हुए जहां तक नजर जाती हरियाली ही हरियाली नजर आती। सड़क के एक तरफ खेतों में फसलें लहलहा रही थीं और दूसरी तरफ अमराई दूर तक दिखाई पड़ रही थी। शायद वर्षों से मुझे किसी ऐसी ही जगह ही तलाश थी जहाँ मैं प्रकृति को इतने करीब से देख सकूँ, सुन सकूँ महसूस कर सकूं। घर से दाई ओर कुछ दूरी पर जहां सड़क का मोड़ था वहां कुछ कवेलू वाले कच्चे मकानों की कतार दिखाई दे रही थी, कुछ मजदूर रहते थे शायद, खेतों मे काम करने वाले, रोजी कमाने कुछ शहर की ओर जाते भी नजर आते। रात होती तो निस्तब्धता को तोड़ता हुआ झींगुरों का शोर बारिश के शोर के साथ घुल मिलकर एक अलग ही समां बाँध देता। रात के अंधेरे में जुगनुओं की चमक पेड़ों के इर्द गिर्द ऐसी जगमगाहट बिखेर देती जैसे आसपास के तारे ही जमीं पर चहलकदमी करने उतर आये हों।

नये मकान में शिफ्ट होना लगभग वैसा ही होता है जैसे फिर से गृहस्थी की शुरूआत करना फिर नये सिरे से सारी व्यवस्था करना। नये परिवेश से ताल मेल बिठाने में ही सप्ताह बीतने लगा था। कमरों में जरूरत के अनुसार सामान जम गया था, पर सब कुछ अपने मन मुताबिक व्यवस्थित होने में काफी समय लग जाता है। इधर ढूँढने के बाद भी घर के कामकाज के लिए काम वाली मिल नहीं रही थी घर के साफ सफाई करते हुए कभी बेहद थकान होने लगती। घर के आसपास कोई घर नहीं था जहाँ थोड़ी बहुत मेल, मुलाकात के बाद इतनी जान पहचान तो हो कि इन सबके लिए सलाह मशविरा लिया जा सके, कोई मदद मिल सके। एक शाम थोड़ी फुर्सत पाकर आसपास का जायजा लेते उन कच्चे मकानों की ओर टहलते हुए जा पहुंची। एक घर का दरवाजा खुला देख मैंने अंदर झांक कर देखा, शायद कोई गृहणी दिखाई दे। वहाँ दरवाजे के पास ही, साँवली लड़की बैठी सूप में चाँवल बीन रही थी। यूँ अचानक मुझे देख अचकचाकर उसने सूप जमीन पर रख दिया और मटमैली सी साड़ी समेटती हुई उठ खड़ी हुई। उसकी बड़ी–बड़ी आँखे मुझसे परिचय पूछने प्रश्नचिन्ह सी मुझ पर आकर टिक गईं। मैने बड़ी सहजता से परिचय देने के लहजे में उसे समझाते हुए कहा ''हम लोग यहाँ नये हैं किसी को जानते नहीं हैं। दरअसल घर के ऊपरी कामकाज के लिए 'बाई' ढूंढ रहे हैं क्या तुम जानती हो यहां किसी को ?'' उसने कहा कुछ नहीं बस नकारात्मक जवाब में सिर हिला दिया। मैंने दरवाजे पर खड़े–खड़े ही सरसरी नज़र से पूरे कमरे का मुआयना करने की कोशिश की। साफ सुथरी कच्ची फर्श गोबर से लिपी हुई थी। एक कोने में कुछ बर्तन पतीले एक टूटे से रैक पर सजे हुए थे। एक लंबे बांस में रोजमर्रा के कपड़े दरी, चटाई व्यवस्थित टांग दिये गये थे। उसने झट से मेरी निगाहों का अनुसरण करते हुए दरी निकालकर बिछानी चाही मेरे बैठने के लिए। ''अरे नहीं रहने दो। मैं चलूंगी, बस ऐसे ही आ गई थी तुमसे मिलने! थोड़ी जान पहचान करने!'' कहकर मैं बाहर निकल आई। मुड़कर देखा तो वह दरवाजे पर खड़ी हैरत से मुझे निहार रही थी निः शब्द। अचानक मैने उससे पूछ लिया–– ''क्या तुम करोगी काम मेरे यहाँ''

''मैं ?'' अवाक सी वह मुझसे पूछ रही थी।

''हां, अगर तुम करना चाहो, पगार जो तुम चाहो दे दूंगी।'' वह कुछ सोच में पड़ गई। जैसे किसी असमंजस में हो। ''तुम सोच लो और अपने पति से इजाजत भी ले लो। अगर करने का इरादा हो तो मुझे खबर दे देना। वहां मेरे घर आकर।'' मैंने इशारे से अपने घर की ओर इशारा कर उसे समझा दिया। वहां से तेज कदमों से चलती घर पहुँची तो कहीं मन मे तसल्ली थी कि नौकरानी की खोज पूरी हुई। देखने में सीधी सादी और भरोसेमंद तो लगती है मैं खुद को आश्वस्त करने की कोशिश कर रही थी। अनजानी जगह पर अनजान लोगों के बीच एक असुरक्षा का भाव एकाएक फन फैलाने लगता है। पता नहीं कैसे होंगे क्या होगा, संदेहो के दायरे मन के विश्वास को झिंझोड़ने लगते हैं संकुचित होकर, लेकिन इससे मिलकर मन का विश्वास कुछ मजबूत हो चला था। अगला दिन उसके इंतजार में बीत गया वह नहीं आई। लगा कि हो सकता है उसे जरूरत न हो काम करने की! फिर भी एक बार उससे पूछ लेने में हर्ज ही क्या है। शाम होते होते दुबारा फिर उसके घर की ओर चल पड़ी। वह बाहर ही बैठी मिल गई जैसे मेरी राह ही देख रही हो। '' तुमने बताया नही ?'' जवाब में वह सर झुकाकर चुपचाप खड़ी हो गई जैसे कोई गलती हो गई हो उससे। मांग में सिंदूरी रेखा देखकर मैंने पूछा, ''तुम्हारे पति क्या करते हैं ? '' ''रिक्शा चलाता है।'' संक्षिप्त सा जवाब देकर वह चुप हो गई।

''अच्छा तो शायद उसने तुम्हे मना किया होगा काम करने के लिए।'' मैंने अनुमान लगाते हुए कहा।
''नहीं मैंने तो उससे पूछा ही नहीं।'' उसके जवाब से मैं हैरान थी।
''फिर भला क्या बात है ?'' कुछ देर ख़ामोश रहने के बाद उसने जैसे कुछ साहस जुटाकर कहा– ''मैं काम तो करना चाहती हूँ लेकिन उसे बताये बिना।''
''भला ऐसा क्यों ? ऐसा कैसे हो सकता है कि तुम काम करो और उसे पता तक न चले? बात कभी खुली तो झगड़ा करेगा तुमसे।'' मैंने उसे आगाह करते हुए कहा।
''उसे कुछ पता नहीं चलेगा, उसके जाने के बाद आकर सब काम निबटा जाया करूँगी उसके आने से पहले घर चली जाया करूँगी।''
''ठीक है अगर तुम नहीं चाहती कि उसे पता चले तो यही सही। यह तुम्हारा आपसी मामला ठहरा!'' मैं और क्या कह सकती थी। दूसरे दिन वादे के मुताबिक वह सुबह–सुबह आ गई तो मुझे भी चैन पड़ा। काम भी बड़े सलीकेदार था उसका साफ सुथरा। ज्यादा कुछ कहने की समझाने की जरूरत नहीं पड़ी मुझे। जहाँ दूसरी कामवाली बाईयों के हाथ के साथ–साथ ज़ुबान भी तेज़ रफ्तार से भागती है वहीं यह खामोशी से सारा काम निबटा कर चलीं जाती। पति से काम करने की बात छुपाने के पीछे उसकी कौन सी मजबूरी हो सकती है ये सोच नहीं पा रही थी। शायद नई शादी होगी तो अपने रूचि के अनुरूप सजने संवरने का मन होता होगा उसी के लिए गहने कपड़ों के लिए बचत करना चाहती होगी। रिक्शे से होने वाली आमदनी तो घर गृहस्थी की जरूरतों में ही भस्म हो जाती होगी। उस पर फिर दिन भर की थकान उतारने अधिकांश रिक्शेवालों की आधी कमाई तो नशे की लत में ही स्वाहा हो जाती है। खैर अब यह उनकी व्यक्तिगत जिंदगी के फैसले ठहरे। मुझे उन सबसे क्या लेना देना और मैं बाजार से लाने वाले सामानों की लिस्ट बनाने लगी। महीना खत्म होने वाला था। रोजमर्रा की आपा धापी के बीच महीना कब खत्म हो गया पता न चला। पहली तारीख को उसके हाथों में पगार देते हुए पूछ ही लिया–''पति से छुपाकर इन रूपयों को कहां रखोगी तुम ? और कुछ गहने कपड़े इन रूपयों से खरीदोगी तो वह पूछेगा नहीं कि कहां से आये इनके लिए पैसे ? शक नहीं होगा उसे ?'' मैं उससे सवाल पर सवाल किये जा रही थी और वह इनसे बेखबर कहीं जैसे शून्य में देख रही थी कहीं और ख़यालों की दुनियां में जैसे डूबती जा रही थी, फिर एकाएक मुझसे मुख़ातिब होकर धीमी आवाज में जैसे कोई रहस्योदघाटन सा करती कहने लगी– ''इन रूपयों को अभी आप अपने ही पास रख लीजिए। मेरा दूर के रिश्ते का मामा गाँव से आना जाना करता है वह आयेगा तो उसी के हाथों इन पैसों को अपने बाबा के पास भिजवा दूंगी। मुझे कुछ नहीं चाहिए अपने लिए, मेरे लिए तो मेरे पति की कमाई ही काफी है मुझे चिंता है तो अपने बीमार बाबा की पता नहीं बेचारा किस हाल में होगा। माँ की तरह उसी ने मुझे पाल पोसकर बड़ा किया है मैं ही उसका बेटा हूँ और मैं ही उसकी बेटी! मेरे सिवा उसका है ही कौन ? कुछ सालों से वह बीमार रहने लगा है। दमे की शिकायत है इसलिए काम, मजदूरी कर नहीं पाता और रात में भी उसे दिखाई नहीं देता।'' कुछ देर ठहर कर वह अपनी आँखो मे आये आंसुओ के सैलाब को रोकने का जैसे असफल कोशिश कर रही थी।

बाबा की हालत देखकर वह ब्याह करना नहीं चाहती थी पर वह बेटी को अपने अपने जीते जी सुरक्षित आसरा देना चाहता था। शादी से पहले उसने साफ शब्दों में शर्त रखी थी कि शादी के बाद पिता को भी वह साथ रखेगा देख़भाल करेगा। उस समय तो उसने हामी भर दी थी भरोसा भी दिलाया था कि बेटे की तरह उसका ख़्याल रखेगा लेकिन शादी के बाद सारे वादे कपूर की तरह हवा में उड़ने लगे थे। अपनी जिम्मेदारी से लापरवाह वह बस अपनी ही दुनिया में मस्त रहता। वह कभी याद दिलाती तो झगड़ा करता उससे। रोज–रोज के झगड़ों से तंग आकर उसने पति से कुछ कहना ही छोड़ दिया था लेकिन मन ही मन निश्चय कर लिया था कि वही कुछ करेगी अब! खुद कमाकर बाबा को भेजेगी ताकि उसे भूखे पेट न सोना पड़े! औलाद कितना भी करे मां बाप का कर्ज कभी चुका नहीं सकती। कभी बात खुल भी गई तो तब की तब देखी जायेगी। बड़े दार्शनिक अंदाज में वह कहे जा रही थी– ''पिता के लिए कुछ करना गुनाह नहीं कर्तव्य ही होता है।'' उसकी आँखों की चमक में झलक रहा था उसका आत्मविश्वास और उसका दृढ़ संकल्प! कमजोर सी दिखने वाली इस लड़की के इरादे कितने मजबूत थे कितने ठोस!! मैं मन ही मन उसकी कायल हो गई थी उसकी शख्सियत एकाएक मेरी नजरों में आम लोगों से कहीं बहुत ऊपर उठ गई थी, नितान्त अनौपचारिक और अघोषित कर्तव्यनिष्ठ हस्ती के रूप में। मुझे लगा उसने बड़े जतन से जुटाकर एक धरोहर सौंपी है मुझे! एक बहुत बड़े मकसद के लिए.........।

नीम अंधेरे–कविता संग्रह

कवितायें कभी पहले से कहकर नहीं आती, जब भी आती हैं दबे पांव, बिना दस्तक दिये–कभी पीछे से आकर दोनों हाथों से आंखें बंद कर छुप जाती है तो कभी गले में बाहें डालकर झूल जाती हैं नन्हीं बच्ची की तरह/कभी देर रात ओस की बूंदों सी चुपचाप उतरती है तो कभी मौसम के कांधों पर सवार इठलाती हुई पहुंचती है.......यह कथन है प्रकृति की गोद में पूर्ण रूप से समाई श्रीमती मोहिनी ठाकुर जी का। मोहिनी जी वास्तविक जीवन में भी प्रकृति की गोद में ही रह रही हैं। ये कविता संग्रह 'नीम अंधेरे' उनके जीवन का प्रकृति के वास्तविक सानिध्य में बिताये पलों का लेखा–जोखा ही है।

कवितायें वास्तव में हृदय में कभी भी उठ जाने वाली तरंगें ही हैं जो खुद से रूबरू कराती हैं–

हो गया है अब
आसान बहुत
तोड़ लेना तारे
आसमान के
और भर लेना
बादलों को
अपनी मुट्ठी में
अब हूं मैं
जमीं की गिरफ़्त से.

बहुत दूर
खुली हवा में
बहती हुई
चांदनी की तरह
जहां चांद उठता है
मेरे इशारे से
और जाग उठता है
सबेरा मेरे गुनगुना लेने से....

कविता ही हृदय की गहराईयों से होती हुई आसमान की ऊंचाई छू सकने का सामर्थ्य रखती है और अगर अपनी क्षमता को पहचान ले तो–

मिल जाता है
खुशी का मीठा झरना
अपने ही आसपास
जरा सी मिट्टी
कुरेद लेने भर से

यूं दिल को छू लेने वाली कविताओं के सत्तर से अधिक फूलों से सजे गुलदस्ते में तरह–तरह की खुशबु समाई है–

बचपन की खुशबु है
धूप की नदी
बादल की नाव
सैर आसमां की
ठण्डी सी छांव
छूट गया दूर कहीं
बचपन का गांव
थकने लगे मौसम के
नन्हें पांव

उपरोक्त कविता में घूप, बादल, आसमान, नदी आदि सभी का अर्थ ही बदल दिया। इनका यही अंदाज सभी कविताओं की खास विशेषता है। यही इनकी शैली है। प्रकृति के चिन्हों को प्रकृति के चित्रों से उठाकर मानव जीवन से जोड़कर तारतम्य स्थापित करना मोहिनी जी की कलम की ताकत है। वर्तमान में इस शैली को अपनाने वाले उंगलियों में गिने जा सकते है। अन्य बिम्बों का प्रयोग बहुतायत में होता है।

अपनी इस विशिष्ट शैली की कविताओं को लिखते वक्त तमाम अनुभव हुए होंगे तब तो उन्होंने 'हौसला' कविता में लिखा है–

हर लहर को मालूम है
अंजाम अपना

उठना–गिरना
चट्टानों पर
सर पटकना और
टूटकर बिखर जाना
फिर भी
कम नहीं होता
हौसला उनका
और न ही पसीजता है
चट्टानों का दिल
पत्थर का.....

उन तमाम प्रश्नों के उत्तर इस छोटी कविता के माध्यम से प्रश्नकर्ताओं के चेहरे पर चटका दिये हैं।

कविता संग्रह का शीर्षक 'नीम अंधेरे' भी प्रकृति की उस अवस्था का नाम है जो प्राकृतिक रूप से ही नजर आती है। कृत्रिम रूप से पैदा किये गये अंधेरे को ये नाम देना प्रकृति की उस विशिष्ट अवस्था का अनदेखापन ही कहलायेगा।

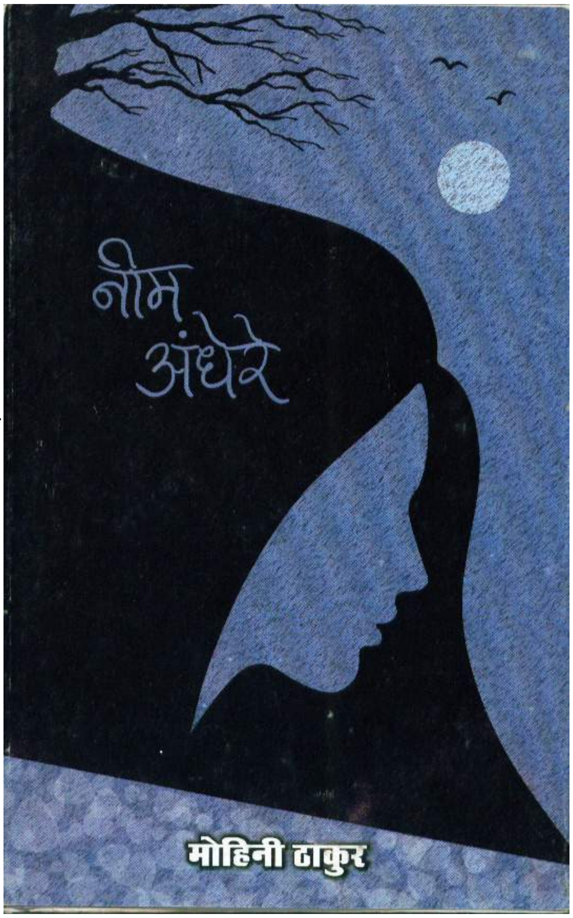

जीवन के सन्नाटे का वर्णन है–

सन्नाटे का सैलाब
फिर चढ़ आया है
मेरे अस्तित्व को
लीलने
मन फिर आज
डूब गया है
गले तक
खालीपन के जल में........

तो मन की वाचालता और उसके अंतहीन अनुत्तरित रहने का वर्णन है–

कभी–कभी मन
खुद से ही
पूछता है प्रश्न
और
अनुत्तरित होकर
बेताल की तरह
फिर जा बैठता है
किसी वृक्ष के ठूंठ पर
नये सिरे से
नई पहेलियां बुझाने

इसके बाद फिर से चाहत मन की हो जाती है–

मन की भी/क्या खूब/चाहत हुआ करती है/भीड़ में–अकेलेपन को/और अकेलेपन में/भीड़ को खोज लेने की....

अलग ही तरह का आनंद देने वाली इनकी कविताओं में प्रकृति रग–रग में समाई महसूस होती है। मानव जीवन के सुख–दुख, जीवन शैली सबकुछ प्रकृति के चिन्हों के बीच खोज लेने वाली कवितायें पठनीय हैं। इनका पढ़ा जाना कविता प्रेमी के लिए उतना ही आवश्यक है जितना उनका कविता रचना! इनके गहरे बिम्बों वाली कविताओं के उदाहरण से वे अपनी कविताओं को एक नया आयाम दे सकते हैं। उन्हीं के शब्दों में हम सभी के लिए संदेश है–

यादों का इक/नन्हां सा दीया/दिल में जलाया कीजिए/यूं ही अकेले में/कभी कुछ/गुनगुनाया कीजिए।

इंतजार

कालेज के वे दिन जब पहली ठंड ने दस्तक दी, बड़ा अच्छा लग रहा था, कालेज की पहली ठंडक बिल्कुल वैसी ही होती है जैसे किसी पौधे में फूलों का आना। मैं अपने दोस्तों रवि, निसिकांत के साथ कालेज में मजे से पढ़ाई करता हर प्रोग्राम डिबेट में भाग लेता, इस तरह यह कहें कि कालेज में लोकप्रिय हो गया था। कविता लिखना, पाठ करना मेरी आदत में शामिल हो गया था। पढ़ते–पढ़ते दूर ख्यालों में रोज कोई स्वपन देखता, पढ़ने में मैं कभी बहुत अच्छा नहीं था पर पता नहीं क्या था कि मुझसे ज्यादा मेरे दोस्त मुझसे अपेक्षा करते थे। जब परीक्षा के समय मैं किसी क्लास में जहाँ मेरी सीट होती मेरे अगल–बगल के सारे दोस्त सोचते अब पेपर आसानी से हो जायेगा, जबकि मेरी खुद क्या स्थिति रहती थी इसका अन्दाजा सिर्फ मैं कर सकता था, फिर भी पूरे उत्साह के साथ मैं अपने दोस्तों का मनोबल ऊँचा करता था। कभी इसी उत्साह का परिणाम यह होता कि मेरे दोस्त अपनी उपलब्धि का क्रेडिट भी मुझे देते, उन्हें मेरा साथ बहुत अच्छा लगता, पान, सुपारी, गुटका जिसका मैं सख्त विरोधी था तथा अपने दोस्तों को सदा मना करता। मेरे दोस्त जो इसके आदी होने पर मेरी इज्जत बहुत करते इस कारण कम से कम मेरे सामने कभी पान आदि खाकर नहीं आते। मेरी इन बातों ने कहीं न कहीं मेरे इस संकल्प को दृढ़ किया कि यदि आदमी खुद अच्छा हो तो वह लोगों को अच्छा कर सकता है। कभी–कभी कार्यक्रमों के दौरान मेरे विचारों से जुड़े शब्द–वाक्य इतने महत्वपूर्ण एवं तर्कपूर्ण होते जो मैं खुद नहीं समझ पाता कि यह कैसे हो गया पर मेरे दोस्त मेरी कला के कायल हो जाते।

वे छुट्टियों के दिन थे परीक्षा सर पर थी मैं परीक्षा की तैयारी के लिए किसी दोस्त की तलाश में था ताकि मैं अच्छी तैयारी कर सकूँ, उसी समय मेरी मुलाकात मेरे एक दोस्त अभिषेक से हुई, उसने मुझसे कम्बाइन्ड स्टडी के लिए अपने घर आने के लिए बुलाया मैं तुरन्त चल पड़ा, उसके घर आने–जाने का सिलसिला चलता रहा और हमारी तैयारी अच्छी होने लगी, हम साथ–साथ घूमते, खाते से हमारी दोस्ती काफी गहरी हो गयी।

इसी बीच उसके यहाँ मेरी मुलाकात एक लड़की से हुई जो शायद पहली लड़की थी जो न देखने में ही इतनी आर्कषक थी और न उसका रूप रंग ऐसा था कि उससे जुड़ने का कोई बाह्य कारण हो। हाँ वह अंग्रेजी विषय में अच्छा ज्ञान रखती, गृह कार्य में दक्ष थी, आई0ए0एस0 बनने का ख्वाब देखती थी, उसके चेहरे से उसकी योग्यता एवं उसकी महत्वाकांक्षाओं का पता लगाना आसान नहीं था। पर पता नहीं कब कैसे क्या हुआ हमारा एक–दूसरे से मिलना, घंटो बातें करना उसे मेरी कविता और उसमें शब्दों के चयन तथा गहराई पर बहुत आश्चर्य होता और वह हर कविता के पीछे छुपे मेरे भावों को जानने की कोशिश करतीं। शायद कुछ खोजती पर जब उसे कोई स्पष्ट उत्तर न मिलता तो कभी–कभी झुंझला जाती, उसे गुस्सा जल्दी आता था और जब उसे गुस्सा आता तो मुझे हँसी और यही उसके गुस्से का कारण बन खत्म होकर एक नये गुस्से का जन्म हो जाता और तब वह अपनी कोई किताब लेकर छत पर चली जाती, तब तक नहीं आती जब तक हम चले नहीं जाते। पर जब हमारी गाड़ी स्टार्ट होती वह दौड़कर छत के किनारे पर आती पर मेरी मुस्कान देखकर उसी आवेग में पुनः पीछे हट जाती। इस तरह हमारा लगाव बढ़ता गया, परीक्षा खत्म हुई मैं उससे मिलने पहुँचा पर वह किसी विषय पर मुझसे नाराज थी, हमेशा की तरह छत पर थी, वह चाहती थी कि कम से कम आज मैं उसे मनाऊँ पर ऐसा हो नहीं पाया, मैं काफी देर तक उसका इन्तजार करता रहा, पर वह नहीं आयी, उसे नहीं पता था कि हर शाम की तरह उस शहर में वह मेरी आखिरी शाम थी, पाँच बजे मैं उसके कमरे से निकला, सीढ़ियाँ उतरते हुए गेट पार कर जब मैंने अपनी मोटर साइकिल स्टार्ट की तो उसने हमेशा की तरह छत के किनारे आकर मुझे देखा, पर इस बार मेरे चेहरे पर मुस्कान नहीं विदाई के भाव थे, आँखो में कुछ मिले–जुले पनीले कण थे, शायद उसने मुझे रोकने के लिए अपना हाथ भी उठाया पर आवाज कहीं अन्दर दबकर रह गयी। आज वर्षो बीत गये उस घटना को पर मुझे विश्वास है कि आज भी वह छत पर मेरा इन्जार करती होगी।

शिशिर द्विवेदी
उपसंपादक मीडिया विमर्ष
बस्ती उत्तरप्रदेश
मो.–09451670475

नारी लेखन : कहने की जरूरत ?

थानसिंह वर्मा
शांति नगर, गली नं.–2
राजनांदगांव, छ.ग.
मो.–09406272857

हिन्दी साहित्य में महिला लेखन का सवाल 'दलित साहित्य' या 'दलित विमर्श' की तरह आज चर्चा में है। एक पक्ष यह मानता है कि साहित्य में महिला–पुरूष जैसा विभाजन संभव नहीं है। साहित्य आखिर साहित्य होता है।उसका संबंध उसके संवेदना, अनुभव से है। दूसर पक्ष यह मानता है कि 'स्त्री' ही स्त्री के अनुभवों को ठीक–ठाक व्यक्त कर सकती है। ऐसा मानने वाले महिला लेखकों की एक लम्बी फेहरिस्त प्रस्तुत करते हैं। वे उनके लेखन के मूल्यांकन के लिए एक अलग तरह की संवेदना की मांग करते हैं।

जब बात निकली है तो स्वाभाविक है कि लेखकों का ध्यान उस ओर जाये। इस बहस–मुबाहिसे में लेखिकाएं आगे हैं। ज्यादातर अपनी रचनाओं के मूल्यांकन के इस आधार को लेकर कि 'उन्हें महिला होने के कारण 'कव्हरेज' मिल रहा है या महिला होने के कारण पाठकों के बीच लोकप्रियता प्राप्त हो रही है। या निरस्त किया जा रहा है तो महिला होने के कारण। महिला लेखकों में यह धारणा बनी हुई है। लेकिन स्थापित महिला लेखक इसे एक सिरे से खारिज करती है। उनका यह मानना है कि ''साहित्य में महिला–पुरूष जैसा विभाजन उचित नहीं है।'' जब लेखक कलम उठाकर अपने लिखने का धर्म निभाता है तब वह केवल लेखक ही होता है। स्त्री–पुरूष के शरीर से परे, धर्म, समाज और परिवार से ऊपर उठ जाता है।'' (1) ''लेखन लेखन होता है, नर या मादा के खानों में बॉटकर देखने वाली दृष्टि पूर्वाग्रह ग्रस्त है। लेखन जिस तरह पुरूष लेखक की अनुभूति है और चेतना की अभिव्यक्ति है, 'स्त्री' लेखक द्वारा लिखा गया लेखन (भी) उसके विशिष्ट अनुभवों और आत्मा चेतना की अभिव्यक्ति है।'' (2)

दरअसल ऐसी विभाजनक रेखा खींचने का कार्य 'शोध कार्य' के तहत किया जा रहा है। जिसके संदर्भ में मृदुला गर्ग का कहना हैं ''हमें शोध से एतराज नहीं होना चाहिए, जो लेखन विशेष में नारी वादी दर्शन के विभिन्न बिन्दुओं की तहकीकात करे।'' (3)

लेखन के क्षेत्र में नारीवादी दृष्टि महिला लेखकों की ही है। हिन्दी साहित्य में पचास के पहले तक जो कुछ लिखा गया, उसमें नारी का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं होता। नारी का शोषण, उत्पीड़न, नारी की आशा–आकांक्षा अपनी सम्पूर्णता में व्यक्त नहीं होती। इसलिए उसे निकट से देखने–समझने वाली लेखिकाएं ही इसे व्यक्त कर सकती हैं। वे यह मानती है कि ''स्त्री अपने पारिवारिक दायित्वों से मुक्त नहीं होती, यहीं से उसकी परतंत्रता का आरंभ होता है। इसे पोषित करने वाले कई घटक हमारे समाज में है। परिवार, शैक्षिक संस्थाएं और मीडिया तथा अन्य माध्यम आदि स्त्री संबंधी अपनी पारम्परिक मान्यता को ही बढ़ावा देते रहते हैं, तमाम प्रकार की प्रगतिशील दृष्टियों के बावजूद ये स्त्री को परोक्षतः कटघरे में ले आना चाहते हैं जिसे तोड़ना आसान नहीं है। लेखन–जहॉ तक जीवन्त और सक्रिय रहता है वहाँ उसको सामयीकृत या सरलीकृत किया जाता है। '' (4) इसलिए नारी के शोषण, उसकी विवशता, पुरूष प्रधान समाज में उसकी स्थिति को व्यक्त करने के लिए अलग तरह के लेखन की मांग की जाने लगी है। पर इससे भी उसकी कामकाजी, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक प्राणी के रूप में उसकी छवि कम अंकित हुई। स्त्री के सेक्सुअल शोषण का चित्रण अधिक हुआ, उसके आत्म बोध, चिंतन व सामाजिक उपस्थिति का कम।

सत्तर के दशक से इस स्थिति में बदलाव आना शुरू हुआ। महिला लेखकों ने अपने उस छवि को तोड़कर समाज के मूल प्रश्नों से सामना करना शुरू किया। उनके लेखन में विविधता आना शुरू हुआ। जिसे महिला लेखन कह कर एक खांचे में कैद नहीं किया जा सकता। नासिरा शर्मा का ''सत घरवा'' जो साम्प्रादियकता के घेरे को तोड़कर विशुद्ध मानवीय संबंधों पर केन्द्रित है। मॉ के प्यार से हिलके अब्दुल को अपराधी समझ कर गिरफ्तार कर लिया जाता है बहु जी के कहने पर। इन्हें कौन–समझाये कि– इन बंगलो में भी अपराधी रहते हैं।'' (5) अब्दुल को कैफ़ियत देने पर छोड़ तो दिया गया पर मॉ से नहीं मिल पाने का दुख था – वह अपने घर जाना चाहता था पर ''अब कोई बस न थी, न ट्रेन का समय था, और कल मॉ का तीजा था।'' (6) अब्दुल पुनः उसी घर में लौट जाता है।

चित्रा मुद्गल की कहानी है 'लपटें'। इस कहानी में उन्होंने क्षेत्रीय अस्मिता को उभार कर किस तरह साम्प्रदायिकता की भावना पैदा की जाती है उसका उदाहरण प्रस्तुत किया है। 'आपला मानुष', 'आमची मुंबई', आमची लोक सेना' के नाम से जन भावना को, क्षेत्रीयता को उभार कर बरसों से रचे–बसे लोगों को बाहर कर देने या अपनी राजनीतिक रोटी सेंकने की कोशिश की जाती है। जब–तब भय दोहन किया जाता है। असुरक्षित प्रवासी कहीं प्रतिरक्षा में साम्प्रदायिक हो जाते हैं

भयवश उन्हीं के शरण में जाने के लिए विवश हो जाते हैं – ''इन्हीं के बीच रह कर जीना–मरना हुआ तो ब्याज दण्ड हंसी–खुशी स्वीकार कर लेने में कैसी हिल–हुज्जत।'' (7)

चित्रा मुद्गल की कहानी 'बलि' में सामंती शक्तियों की समाज में उपस्थिति, अंधविश्वास तथा उनके शोषण के क्रूरतम स्वरूप का चित्रण किया गया है। अपनी मंगली बेटी के विवाह के लिए गुइंयादीन जैसे गरीब के बेटे की बलि दे दी जाती है। ठाकुर बलभद्र सिंह को अपनी पुत्री सोबरन सिंह जैसे नामी जमींदार के घर ब्याहना था – पंडित विन्ध्येश्वरी शुक्ल लड़की को मंगली बताते हैं। इस संबंध को अशुभ, अमंगल बताते हैं। पर बहुत आग्रह करने पर उसकी काट भी बताते हैं कि पहले किसी किशोर से उसकी शादी कर दी जाय तो यह ग्रहदशा टल सकती है। ठाकुर बलभद्र सिंह को युक्ति सूझ जाती है वह गुइंयादीन को बुलाकर उनसे 'करूआ' को मांगते हैं। बदले में अपने साग–सब्जी की फुलवारी उसके नाम कर देने की बात कहते हैं – ''विनोबा महराज स्वर्ग सिधार गए गुइंयादीन मगर हम उनके भूदान यज्ञ के कट्टर अनुयायी ठहरे, देर से ही सही, हमने निश्चय किया है कि बलुआ काछी पर बटाई में उठी साग–सब्जी की फुलवारी का पट्टा........... हम तुम्हारे नाम कर देंगे।'' (8) और दूसरे दिन पता चला ''गंगा पार कराते समय भैंसी के पीठ में चढ़ि के बैठा 'करूआ' संभले–न–संभला रपट के धार में बह गया।'' (9) 'करूआ' बह नहीं गया, ठाकुर साहब की मंगली बिटिया के मंगल के लिए बहा दिया गया।

जया जादवानी की कहानी 'शाम की धूप में' देश के विभाजन से प्रभावित विस्थापित एक सिन्धी परिवार की कहानी है। अपने वतन को त्यागकर, सब छोड़कर जान बचाकर आने वाले इन लोगों में गज़ब की जिजीविषा है। वे कभी–जीवन संघर्ष में हार नहीं मानते। जहां भी बसे वहीं अपनी मेहतन, लगन से उठ खड़े हुए। पर पराजित हुए तो अपनों से। लाखों की प्रापर्टी बनाने वाला सेठ दो जून की रोटी के लिए तरसता है। अपनी पत्नी से वह कहता है– ''क्या तुम सोच सकती हो, जिस आदमी ने लाखों की प्रापर्टी बनाई, वह दो जून के लिए महंगा है। ये मेरे बेटे हैं। ....जिन्हें मैंने हर पीर–फकीर से झोली फैला कर मांगा, इनके साथ भी यही होगा।'' (10) कारखाने का मालिक बुढ़ापे में सायकल सुधारने वाले हम उम्र राजू से कहता है 'राजू मुझे कोई काम मिल सकता है ?'' (11) उसे लगता है ''सुबह जो भुलावा देती है, शाम उसे आहिस्ता से वापस ले लेती है।'' (12)

नासिरा शर्मा की कहानी 'वही पुराना झूठ' फ़र्ज अदा करने के नाम पर लड़कियों को जिस–तिस के पल्ले बांध देने के खिलाफ है। ग़फ़ूर की मॉ कहती है – ''हमने गांठ बांध ली कि आँख मूंद करके लड़कियों को ब्याहने वालों की हमें तरफदारी नहीं करनी है। अगर शादी बेहतर जगह नहीं होती है तो न हो, कम से एक बार मिली जिंदगी को वह जी तो सकती है।'' (13) उसके पुत्र ग़फ़ूर ने यह क़सम खाई थी कि वह हर मुसीबतज़दा औरत की मदद करेगा।''

अपने कर्तव्य से मुक्त होने के लिए रज्जो बी जाहिदा का हाथ जिस किसी से पीले कर देना चाहती है। वह मालदार बूढ़े अंधे से उसे बांध देना चाहती है पर जाहिदा हाथ छुड़ाकर कलकत्ते की भीड़ में खो जाती है। रज्जो बी अपने मुहल्ले के लोगों को बताने के लिए झूठ का सहारा लेती है। वह सपने में देखती है कि जाहिदा सरौता चलाती उन लड़कियों के बीच पहुंच गई है जिन्हें गफूर ने संरक्षण दिया है और स्वयं को तसल्ली देती है।''

महिला कथाकारों की कहानियों में जहॉ एक ओर मध्यम वर्गीय समाज में शिक्षित, नौकरी पेशा स्त्रियों के अधिकारों के प्रति सज़गता आई है तो अपने आस–पास गुजर करने वाली महरियों, चौका बासन, या मजदूरी करने वाली महिलाओं तथा बच्चों के प्रति भी असीम करूणा दिखाई देती है। शुभदा मिश्रा की कहानी 'या जसुमति की दुख', मुंजल भगत की 'काली लड़की का करतब' इसी तरह की कहानी है। जहां भूख, गरीबी सामान्य जन की संवेदना को खत्म कर देती है। जीने के लिए अपने बेटे–बेटियों को या तो गिरवी रख देना पड़ता है, या उनका सहारा लेना पड़ता है।

''काली लड़की का करतब'' में लेखिका ने लिखा है – ''संसार और समाज में पहला कदम धरने से पहले औरत को उसके औरत होने का एहसास करा दिया जाता है।'' (14) भूख से तड़पती लड़की माता–पिता का पेट भरने करतब दिखाते पट्ट हो जाती है। महारानी एक बार किसना के 'हवस' का शिकार हो गई है। अबोध महारानी अपने पिता से भी डरती है। करतब करते लड़की को भूख से मरते देख वह सीख लेती है। अपने बापू से कहती है – ''बापू मैं साया सुथनी पहनूंगी।'' मैं सामने वाली बीबी के घर झाड़ू पोंछा करूंगी। (15) भुंईयां को लगा वह निपट अकेला नहीं है।''

लवलीन की कहानी 'बहुस्याम' तथा लता शर्मा की 'मर्दाना कमजोरी' पहली नज़र में स्त्रीवाद कहानी लगती है, पर ये दोनों कहानियाँ गंभीर यथार्थवादी तथा समाजशास्त्रीय अलोचकीय दृष्टि की मांग करती है। जब वह कहती है – तुषार

जी! यह स्त्रियों की सहज आकाक्षाएं हैं जो सिर्फ हमारे औरत होने के कारण, सामाजिक स्थितियों की जड़ता के कारण मूलभूत मानवीय सदिच्छा न होकर अश्लील लालसायें बता दी जाती हैं। औरतों के लिए सेक्स फार दे सेक ऑफ सेक्स कभी नहीं होता।'' (16) नवलीन पुरूष प्रधान, समाज के उत्पीड़न से बचने के लिए 'सिस्टरहुड' एकजुटता का आव्हान करती हैं। वे नई पीढ़ी में एक ओर परपीड़क समाज को बहिष्कार की बात करती हैं तो दूसरी ओर नई पीढ़ी में आत्म विश्वास भर देना चाहती हैं। उनका मानना है कि ''पीड़ित को ही उठ कर खड़ा होना होगा।'' वह पुरूष विरोधी नहीं है। वे कहती हैं कि ''हमें समान समझ वाले स्त्री–पुरूषों से मित्रता कर अपने–अपने लिए निजी समाज बनाना चाहिए जो इस उत्पीड़क बाहरी समाज का विकल्प बन सके।'' (17) लता शर्मा की कहानी 'मर्दाना कमजोरी' सचमुच 'मार्दाना कमजोरी' को व्यक्त करती है। छै चित्रकारों के चित्रों के माध्यम से अपने शोधार्थी पुरूष मित्रों व गुरूता के गंभीर गर्त में डूबे निर्देशक की नियत को व्यक्त करती है। यह कहानी एक बड़े सच को उकेरती है। जहॉ एक स्त्री को उनके सहकर्मी उठते–बैठते उनके स्त्री होने का अहसास कराते हैं। लेकिन एक स्त्री जब मर्दानी कमजोरी जान जाती है तो वह उन सभी को ध्वस्त करती है। मुस्कुराती मोनालिसा का राज यही है। ''विकृति या दुर्बलता, जो कुछ भी है, कानों के बीच में है। टांगों के बीच नहीं। उसी तथ्य को रेखांकित करती है मोनालिसा।'' (18)

इस तरह हिन्दी में महिला लेखिकाओं द्वारा लिखित अनेक कहानियां हैं, जिसे महज़ महिला लेखन कहकर टाला नहीं जा सकता। महिला लेखिकाओं में विचाराधात्मक प्रतिबद्धता की कमी ज़रूर दिखाई देती है। नमिता सिंह, कात्यानी, नासिरा शर्मा जैसे कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो यह स्थिति वर्तमान है। फिर भी इन कहानियों में समय की सच्चाईयां तो हैं। जो अपने अनुभव की आँच से हर पाठक को तपायेगी व पाठक की दृष्टि को यथार्थ की खुरदरी जमीन तक ले जाने में समर्थ होगी। अब इसे महिला–पुरूष के अलग–अलग खांचे में डालकर देखने की आवश्यकता नहीं है। जो रचना अपने समय के सच को अपनी सम्पूर्णता में व्यक्त करती है उसे स्वीकार करने में हमें हिचक नहीं होनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ–(1) इंडिया टुडे–साहित्य वार्षिकी–1995–96 पृष्ठ–26 (2) इंडिया टुडे–साहित्य वार्षिकी–1995–96 पृष्ठ–21 (3) इंडिया टुडे–साहित्य वार्षिकी–1995–96 पृष्ठ–25 (4) शिखा बेहरा–समकालीन हिन्दी कविता में नारी स्वातंत्रय पृष्ठ–26 (5) इंडिया टुडे–साहित्य वार्षिकी–1995–96 पृष्ठ–134 (6) इंडिया टुडे–साहित्य वार्षिकी–1995–96 पृष्ठ–134 (7) उदभावना–कहानी विशेषांक अंक 39, 40 –1996 पृष्ठ–21 (8) इंडिया टुडे–साहित्य वार्षिकी–1995–96 पृष्ठ–91(9) इंडिया टुडे–साहित्य वार्षिकी–1995–96 पृष्ठ–91 (10) अर्धशती विशेषांक हंस–1997 पृष्ठ–34 (11) अर्धशती विशेषांक हंस–1997 पृष्ठ–35 (12) अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य–हंस–2000 पृष्ठ–60 (13) इंडिया टुडे–साहित्य वार्षिकी–1995–96 पृष्ठ–72(14) अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य–खण्ड–1 (15) हंस–2000 पृष्ठ–94, 95 (16) हंस फरवरी–2002 पृष्ठ–78 (17) हंस फरवरी–2002 पृष्ठ–78

हमने घर–घर बस्तर देखे

कैसे–कैसे मंजर देखे
दुश्मन घर के अंदर देखे।
बस्ती का क्या हाल बतायें–
हमने घर–घर बस्तर देखे।
बच्चों के भी हाथों में अब–
हमने चाकू–खंजर देखे।
कब तक बच्चे काबू रखते–
रीते रोज़ कनस्तर देखे।
आंसू भी न पिघला पाये–
हमनें वे दिल पत्थर देखे।
घर के अब दीयों से हमने–
जलते घर के छप्पर देखे।
जाकर सीधे चुभे हृदय में–
ज़हर बुझे नश्तर देखे।
जिनके 'आनन' लगे घिनौने–
मानव ऐसे अक्सर देखे।

भविष्य जंगल का

पांव सभ्यता के
जब से पड़े हैं जंगल में
धुंधला गया है भविष्य
जंगल का
हो गये हैं हल्दई
चेहरे पेड़ों के।
घुल गया है जहर
हवा में
उड़ाने लगी है अट्ठहास
अट्टालिकायें
जंगल तब्दील हो गये हैं
शहरों में
उग आये हैं
पेड़ आदमियों के।
नहीं बची है जगह
पैर रखने को।
चिंगारी जो छिपा रखी है इसने
अपने हृदय में
बहुत है जलाने के लिए
समूचा जंगल।
जंगल–
जो धड़कन है आदमी की।

अशोक आनन
संपादक आयास
मक्सी–465106
जिला शाजापुर, म.प्र.
मो.–09977644232

उम्मीद

वो सूखे पत्ते वो सूखे फूल न देखो
ये नयी कोंपल की फूटती मुस्कान देखो।
पतझड़ का सन्नाटा धीरे से टूट रहा है
नये पौधों में बहती नयी बयार देखो।
माना हरा–भरा उपवन वीरान सा पड़ा है
बीज पड़ गये हैं आने वाली नयी बहार देखो।
दुःख भी झेला दर्द भी सह गये
अब के मिलने वाला है बेशुमार प्यार देखो।
कोशिशों से मिलेगी कामयाबी ज़रूर
खुशी–खुशी मेरी जीत का खुमार देखो।
बहुत दिया जमाने को हमेशा मैंने
अब की मेरी ये दौलत बेशुमार देखो।
दोस्तों की महफिलें जमने लगीं हैं फिर से
मेरे लिये आया है त्यौहार देखो।
भीड़ में कौन अपना है कौन पराया
शक्ल सूरत नहीं दिल के आर–पार देखो।
खामोशी टूटेगी एक दिन मुझको ये यकीं है
मेरे यकीं पर खुदा भी होगा मेहरबान देखो।

जीवन राग

सुबह सुहावनी खोल रही संभावनाओं के द्वार
करता चल कर्म अपने अवसर मिलेंगे अपार।
चिड़ियों की चहचहाहट में सुन लेना नया राग
जीवन का असल संगीत है, प्रकृति का पराग।
सूरज की लालिमा फैला रही ऊर्जा का संसार
भर ले मुठ्ठी में अपनी, अपने हिस्से का प्यार।
हरे–भरे पेड़ दे रहे हरियाली का संदेश
मत तोड़, मत काट, तेरा अपना यह देश।
कल–कल कर बहती पावन नदियां सारी
प्रदूषित मत कर गंगा–यमुना मां है हमारी।
चलो आज कर लें हम सब एक नयी पहल
बनायें दूसरों के लिए खुशियों का महल।

रीमा दीवान चड्ढा
301–सनशाइन–
के.टी. नगर, काटोल रोड,
नागपुर–440013
मो.–09372729002

केशव शरण
एफ 2/564 सिकरोल
वाराणसी
मो.–09415295137

पावसवश
पोखरे की पेंदी में
पानी हो गया।

वक्त पे आके
ट्रेन आउटर पे
घंटों से खड़ी।

ये तय है कि
चमत्कार के सिवा
कुछ न होगा।

देख लिया न
छेदट्टे बिस्कुट से
चाय छान के।

निवेदन है
मौनव्रत टूटे तो
मीठा बोलना।

चिड़िया चुप
झींगुरों का गायन
शुरू हो गया।

दोपहर में
निकले सूरज की
धूप है मीठी।

मुलाकात थी
आज भी टल गयी
आखिरकार।

पड़ रहा है
कपड़ा उतारना
स्नान के लिए।

चिड़िया को ही
चिड़िया कहता है
छोटा बालक।

मार लिया है
गुबार ने मैदान
शस्य श्यामल।

किस नदी में
किस सरोवर में
निर्मल जल।

फूल खिला तो
तितली भी आ गयी
उस कब्र पर।

एक फरिश्ता
बोतल से पी रहा
डिब्बे का दूध।

फल से ज्यादा
तीलियां कुतरता
वो नया तोता।

उसके आंसू
कोई नहीं पोंछता
जो सदा रोता।

वर्षों हो गये
अंतिम अतिथि को
यहां से गये।

हनीमून से
लौटने के बाद
शादी सोचेंगे।

फल लगे हैं
प्रेम के पेड़ पर
हर किस्म के।

रह गया मैं
सतत संघर्ष में
कि हारा नहीं।

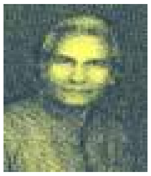

गोपीनाथ कालभोर
पुष्पगोरिनी
जी.डी.सी.गेट(पूर्व) के सामने,
पड़ावा, खण्डवा, म.प्र.
–450001

भक्ति बाहर
भीतर कुछ और
शक्ति का घर।

भगवान भी
खुश उस पर है
जो राक्षस है।

झूठा आदमी
पूजा जाता सर्वत्र
सत्य की कमी।

पूर्व थे पशु
अब आदमी बन
राक्षसी करे।

मानव लीला
से कहीं भिन्न नहीं
ईश्वरी लीला।

समझाया भी
मत जा उस रास्ते
माना न, रोया।

सात सुरों से
हुआ चमत्कार था
बरसा पानी।

कृति दर्पण
पाठकों के समक्ष
ग्रन्थ अर्पण।

विभा रश्मि
201, पराग अपार्टमेन्ट
प्रियदर्शनी नगर, बैदला
उदयपुर–313011
मो.–09414296536

पेशेवर प्रेमी
खुली रखे खिड़की
तके लड़की।

कमल कींच
खिला तलैया बीच
नशे में भौंरा।

भ्रमर काला
गुंजार कर मरे
कमलिनी में।

गौरेया मैया
लाने दाना निकली
फिक्र चूजों की।

गिलहरियां
दौड़ीं लिए धारियां
थके न कभी।

औरत मर्द
पूरक एक दूजे
रहें छत्तीस।

सुमन जैसा
निश्छल हृदय हो
पाओ दुलार।

रजनीगंधा
रानी बनी सुगंधा
सजे उद्यान।

क्यारी सारी हो
फूलों से हरी–भरी
निहाल माली।

युवा हृदय
करते इजहार हैं
पेशे–गुलाब।

तलाश

आज सुबह से ही उदासी मेरे साथ थी। मैं जहाँ भी जाता वह भी साथ ही जाती, जहाँ ठहरता वह भी साथ ही ठहर जाती। जब चलता वह भी साथ ही चल देती। मैं नहीं चाहता था कि वह मेरे साथ रहे पर उदासी थी कि मुझे छोड़ने को तैयार ही नहीं हो रही थी।

बेचैन मन इधर–उधर कुछ खोजने में व्यस्त हो गया। खोज चलती रही पर कहीं कुछ मिल ही नहीं रहा था। क्या था जिसको खोज रहा था मन ? मुझे तो यह भी नहीं पता। थक हार कर चाय बनायी.... चाय पीकर कदाचित कुछ अच्छा लगे पर बात नहीं बनीं। पलंग पर लेटकर सोने का प्रयास किया पर नींद को नहीं आना था सो वह नहीं आई। इस बार उसने अपनी छोटी बहन तन्द्रा को भेज दिया था।

तन्द्रा भी अनमने मन से आयी थी सो कुछ ही देर रूककर चली गयी। मुझे उठना ही पड़ा, उदासी भी साथ ही उठ बैठी। इस बार मन के आवारापन ने भी अपनी आँखे मली जैसे नींद से जागा हो अभी–अभी। मैंने कहा, तुझे भी अभी ही जागना था रे।

वह बोला, चलो कहीं चलते हैं।

मैंने पूछा, कहाँ ?

वह बोला, कहीं भी...... जहाँ भी कहीं कुछ मिल जाय।

मैं, मेरा आवारा मन और मेरी उदासी तीनों घर से निकल कर सड़क पर आ गये। उदासी मुझसे बुरी तरह चिपकी हुयी थी, सिर्फ़ चिपकी हुयी ही। उसे मुझसे कोई मतलब नहीं था। आवारा मन अपनी आदत के वशीभूत हो भटकने लगा और मैं फिर कुछ खोजने में लग गया।

सड़क के किनारे–किनारे सुन्दर सप्तपर्णी की पंक्ति को निहारा, उसके सात–सात पत्तों वाले मुकुट भी आज सुन्दर नहीं लग रहे थे। मेरे पैर मुझे खेतों की ओर ले गये। मैंने देखा, हरा कम्बल सिर से ओढ़कर खेतों में जहाँ–तहाँ बैठे काजू के पेड़ तो ऐसे लग रहे थे जैसे किसी छापामार युद्ध की तैयारी में बैठे नक्सली हों। नक्सलियों का विचार आते ही मन के चित्रपटल पर सिर कटी लाशें और खून के छोटे–छोटे पोखरों पर बैठी मक्खियों के झुण्ड के झुण्ड दिखाई देने लगे। तब मैं तालाब की ओर गया। वहां कुमुदनी तो खिली थी पर लग रही थी श्री श्रीहीन। पार्क गया, झूला झूलते नन्हें–मुन्ने बच्चों की ओर देखा, पर वे भी आकर्षित नहीं कर सके आज। तरूणी के पुष्प देखे, पर मुझे पुष्प कम और उनके काँटे अधिक दिखायी दिये। मैं फिर सड़क पर आ गया।

हम तीनों सड़क पर चलते रहे, अपनी–अपनी दुनिया में खोये हुये। खोये–खोये ही मेरी खोज चलती रही..... और मैं निराश होता रहा। तब मैंने अपने आप से पूछा, क्या खोज रहा हूँ मैं ? कहां मिलेगा वह जिसकी तलाश में मैं हूं ?

मैं स्वयं से पूछे जा रहा था.... उस 'स्वयं' से जो उत्तर न देने की कसम खाये बैठा था। इस 'स्वयं' को आख़िर हो क्या गया है, यह कुछ बोलता क्यों नहीं ?

ओह, अब समझा, उनके पास उत्तर ही नहीं होगा तो बतायेगा कहाँ से। पर उसके पास, उत्तर क्यों नहीं हैं ? यदि उसके पास उत्तर नहीं है तो क्या रिक्तता है वहाँ ?

रिक्तता..... रिक्तता..... रिक्तता......

अचानक एक प्रकाश सा कौंधा........... यही तो उत्तर है– "रिक्तता"।

डॉ.कौशलेन्द्र
शास. कोमलदेव जिला
चिकित्सालय, कांकेर
मो.–0

'स्वयं' ने उत्तर दे दिया, व्यर्थ है यह भटकाव। अन्दर की रिक्तता बाहर की पूर्णता को देख पाने में सक्षम नहीं है। अन्दर का सौन्दर्य ही बाहर के सौन्दर्य को पहचान पाता है। अन्दर यदि रिक्तता है तो वह बाहर भी रिक्तता को ही पहचान सकेगी। अन्दर यदि पूर्णता है तो बाहर की पूर्णता व्यापक हो जाती है। अन्दर यदि कटुता है तो वह बाहर भी कटुता को ही देखेगी, सर्वत्र। अन्दर यदि निर्मलता है तो वह बाहर भी निर्मलता के अतिरिक्त और कुछ देख ही नहीं सकेगी। जो बाहर है आवश्यक नहीं कि वह अन्दर भी हो, किंतु जो भी अन्दर है वह बाहर अवश्य है।

तो यह तलाश बाहर नहीं, अन्दर करनी होगी, खोज की दिशा बाहर नहीं अन्दर की ओर है। खोज की इस यात्रा में कोई साथ नहीं रह पाता...... अकेले ही करनी पड़ती है यह यात्रा।

अब तक "मैं" कहीं दुबक गया था, "उदासी" पलायन कर चुकी थी और "स्वयं" अकेला रह गया था। बादल को भी कभी छटना ही था न। ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णाद् पूर्णमुदच्यते......... का अर्थ अब स्पष्ट होने लगा था।

लोक संस्कृति के संरक्षण में आधुनिक साहित्य का योगदान

नये युग की व्यवस्था ने वर्तमान समय में दो महत्वपूर्ण काम किये हैं, समय के हर पल को महत्वपूर्ण बना दिया है और जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण काम को समय के लिए महत्वहीन घोषित कर दिया है। ये दोनों वक्तव्य विरोधाभासी हैं, एक ही नजर में दिखता है परन्तु यही आज का सत्य है। पूरी दुनिया इन्हीं दो बिन्दुओं को लिए हुए भाग रही है। दुनिया की इस भागमभाग की भीड़ इतनी घनी है कि कोई चाहकर भी रूककर सोच समझकर आगे बढ़ने की जुर्रत नहीं कर पाता है। भीड़ के धक्कों में आगे बढ़ना ही पड़ता है।

परन्तु जल का मूल स्वाभाव शीतलता है और ऐसे ही मानव का मूल स्वाभाव प्राकृतिकता है। प्रकृतिमय हो जाना है। इसलिए प्राकृतिक होने के प्रयास समय–समय पर होते रहते हैं, भले ही धक्कों से व्यक्ति गिर जाये, टूट जाये या बिखर जाये। लोक संस्कृति शीर्षक के अंतर्गत समेटने को इतनी चीजें हैं, इतने विषय हैं कि उन्हें लिख पाना भी मुश्किल है फिर भी बड़े बड़े विषय हैं– आदिम जीवन, परम्परायें, संस्कार। थोड़ी सी और गहराई से झांकने पर पाते हैं कि ये तीनों विषय समेटे हैं जीवन के आधार, यानि रोटी, कपडा और मकान।

विश्व के प्रत्येक क्षेत्र की परम्परायें वहां की परिस्थिति के अनुसार निर्मित होती जाती हैं, उनके ऊपरी आवरण बदल जाते हैं परन्तु मूल भावनायें वही रहती हैं। बानगी देखिये– नदी के किनारे रहने वाला जल उत्पाद पर भूख आश्रित हो जाता है इसलिए नदी उसके लिए पूज्य हो जाती है। जल देवता, जल देवी की कल्पना वहीं बन जाती है, उनकी जीवन शैली में नदी को सहेजने की, स्वचालित मछलियों को दाना खिलाकर लेने लगती है। नदी का पूज्य होना उसे गंदा करने से बचाता है। मछलियों को दाना खिलाकर अपने ग्रह दोष दूर करना, मछली संरक्षण द्वारा पानी साफ करना बताता है और नदी के अधिकार क्षेत्र को सुरक्षित रखने का उपाय है। ऐसे अनंत रहस्यों का निचोड़ होता है कि मनुष्य कैसे प्राकृतिक बना रहे और उसके जीवनदायी सुरक्षित बने रहें। इसी कवायद को आज के वैज्ञानिक 'पर्यावरण संरक्षण' का नाम देकर अपनी पीठ थपथपाते हैं। प्रकृति को सुरक्षित रखना यानि स्वयं के सुरक्षा की गारंटी, इस गारंटी का लाभ लेने के लिए शर्तों पर चलना जरूरी होता है। इन शर्तों की पूर्ति होती है हमारी जीवन शैली से, भले ही इसमें जितना वक्त लगता हो पर इस जीवन शैली को अपनाना जरूरी होता है। परन्तु जेट युग की दौड़ में इनके लिए वक्त कहां है? हम तो दौड़ रहे हैं हमारे पास वक्त कहां है? कहां है हमारे पास वक्त मछलियों को दाना डालने का, नदी को नाली में बदलने से बचाने का? मिनरल वाटर की पहुँच ने नदियों से, कुओं से, तालाबों से ही दूर कर दिया। कब तक धरती चीरकर पानी की पहुंच बनी रहेगी। यह तो जल नदी की बानगी है। यहां हवा, खेत, अनाज, वृक्ष, रिश्ते, घर, सेहत न जाने कितने ही विषय हैं जो इस लोकसंस्कृति के शीर्षक ने समेट रखे हैं।

आज हमारी कविताओं से तितली, फूल, पत्ते गायब होते जा रहे हैं इन्हें दर्शाने वाले कवि आउटडेटेड घोषित कर दिये जाते हैं। नया विषय ढूंढना और उस पर लिखना आधुनिक साहित्य की मांग है। तितली फूल पत्तों का कविताओं से जाना हमें प्रकृति बोध से दूर करता है उनके जीवन से जुड़ाव को रेखांकित नहीं कर पाता है। क्या तितली फूल पत्तों के बिना जीवन संभव है ? परन्तु आउटडेटेड विषय है चाहे वे जीवन के आधार हों। आज कविता होती है मोबाइल पर, केंसर पर, स्त्री सौंन्दर्य पर, रेलगाड़ी आदि पर। इन पर लिखना इसलिए सार्थक माना जाता है कि काल के इस खण्ड को इतिहास में दर्ज कराना है, दुनिया के साथ चलो आदि। खेत, खेती और किसान को न बचाना और सिर्फ अन्न बचाओ का गाना गाना कैसे समयानुकूल हो सकता है?

आधुनिक साहित्य संवेदनाओं को मारने में बड़ी भूमिका निभा रहा है और संवेदनाओं को गाढ़ा करने वाली लोक संस्कृति को पूर्ण रूप से अनदेखा कर रहा है। आधुनिक साहित्य के लिए राजनैतिक विषय, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और साहित्य की विवेचना ही साहित्य बन चुका है। प्रयोग के नाम साहित्य मे शुरू किये कुछ शब्द तो अब साहित्य की रीढ़ घोषित कर दिये गये हैं। आधुनिकवाद, उत्तर आधुनिकवाद आदि। ये वैचारिक जुगालियां समाज के लिए कर क्या रही हैं इस पर सोचने को कोई भी तैयार नहीं है। अब तो जुगालीकर्ता ही इन रचनाओं के पाठक हैं और लेखक भी! आधुनिक साहित्य ने एक तरह से बाजार का कच्चा माल हड़प कर गायब ही कर दिया है, शायद स्वयं को श्रेष्ठ साबित करने की चाह ने। साहित्य की नयी परिभाषा के तहत लोक संस्कृति के वाहक द्वार पर नाचते गाते दिख जायें पर मंच पर असंभव है।

अभी कुछ समय से जादुई यथार्थवाद ने प्रवेश किया है। इस जादुई यथार्थवाद ने जमीन से हटकर ऐसे जादू दिखाये हैं कि नवोदित पाठक/रचनाकार दिग्भ्रमित हो गया। उसे समझ ही नहीं आता कि हमारे पौराणिक ग्रंथों की अवहेलना क्यों

हो रही है ? उन ग्रंथो, कथा संग्रहों में तो जादूभरे दृश्य हैं तो साथ ही साथ नैतिक शिक्षा भी हैं, अचानक आई विपत्ति से लड़ने की सीख भी है तो फिर वे उपेक्षित क्यों हैं? क्यों जादुई यथार्थवाद के नाम पर उलजुलूल परोसा जा रहा है? क्या आधुनिक साहित्य की वाहक लघु पत्रिकायें इस विषय पर सोच रही हैं? कविता, कहानी, लेख चयन पर इस ओर ध्यान जाता है? या जानबूझकर साहित्य की दिशा बदलने का काम हो रहा है। हमें हमारी जड़ों से काटने का क्या औचित्य है, आज जितनी भी पत्रिकाओं में पढ़िये आपको कहानियों और लघुकथाओं में दुनिया की बेईमानी दर्शाने वाली विषय वस्तु मिल जायेगी। बानगी, ट्रेन मे दी गई खाने की चीज खाते ही भिखारन बेहोश हो गई फिर यात्री परेशान हुआ या फिर गरीब की कहानी में जितने भी गुण्डे मवाली हैं वो गरीब बस्ती से उपजते हैं।

ये संवेदनशीलता है या संवेदनहीनता! यही आधुनिक साहित्य है जो गरीब, गरीबी और बेकारी का मजाक बनाता है, आज की कहानियों में इनसे लड़ने के उपाय ही गायब हो गये हैं। उपरोक्त उदाहरणों से तो समाज हर गरीब को शक की ही नजर से देखेगा। ऐसे संवेदनहीन आधुनिक साहित्य से लोक संस्कृति के संरक्षण की उम्मीद किस तरह पूर्ण हो यह प्रश्नचिन्ह लगातार लगा हुआ है।

संपादकों की भूमिका इस संदर्भ मे सबसे महत्वपूर्ण होती है। कारपोरेट घरानों से निकलने वाली पत्रिकाओं के संपादकों के हाथ बंधे होते होंगे पर बाकी क्यों चुप हैं ? लगातार ऐसी संवेदनहीन रचनाओं को छापकर ''यही है साहित्य'' वाली सोच को हटाना है। रचनाओं के माध्यम से समाज में नकारात्मक संदेश न पहुंचे कम से कम इतना तो ध्यान रखना ही होगा। क्योंकि नवोदित रचनाकार ऐसे विषयों को पढ़कर ही लिखना सीखतें हैं, जब वे लगातार ऐसी रचनायें पढ़ेंगे तो हिंसा, बलात्कार और गरीब को चोर साबित करने वाली रचनायें ही लिखेगें। यह सच है कि समाज ऐसा हो रहा है। प्रश्न यह है कि क्या समाज में ऐसा ही हो रहा है ? क्या लेखक की भूमिका समाज की विकृतियों को ही रेखांकित करने की है ?

मोहम्मद जिलानी की लघुकथाएं

मोहम्मद जिलानी
हकिमी हाऊस, दे.गो.
तुकूम, वार्ड नं.–1
चंद्रपुर–442401
महाराष्ट्र
मो.–09850362608

मोबाइल

शहर की प्रसिद्ध पाठशाला में मुख्य अध्यापक से लेकर चपरासी तक सक्रिय दिखाई दे रहे थे। सभी शिक्षक व शिक्षिकाएं अपनी–अपनी कक्षाओं में घंटी बजने के साथ ही जा चुके थे। आज पाठशाला के स्कूल इंस्पेक्टर द्वारा वार्षिक निरीक्षण किया जाना था। हर पल भय का आभास हो रहा था। पता नहीं कब और किस कक्षा में इंस्पेक्टर साहब आ जाये। तभी अचानक कक्षा आठवीं में श्रीमान दीक्षित, इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल ने प्रवेश किया। पूरी कक्षा में शांति छा गयी।

शिक्षक दुर्गाप्रसाद बड़ी आत्मीयता से विद्यार्थियों को गांधीजी के सत्य का सिद्धांत पढ़ाने में मगन हो गये। पाठ का अंत उन्होंने यह कहकर किया। ''बच्चों सदैव 'सत्यमेव जयते' के मार्ग पर चलो।''

उसी वक्त कक्षा में मोबाइल की ध्वनि गूंज उठी। दीक्षित साहब ने पूछा।''आवाज कहां से आ रही है ?''तभी एक विद्यार्थी जो सामने की बेंच पर बैठा हुआ था, खड़ा हो गया। पूछने पर उसने संकुचित शब्दों में कहा। ''आपको आता देखकर, गुरूजी ने अपना यह मोबाइल मुझे थमा दिया।'' उसी समय अपने मोबाइल पर कॉल आते ही इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल दीक्षित साहब कक्षा से तुरंत ही बाहर निकल पडे।

संकल्प

''अरे भईया! क्या कर रहे हो ?'' चिड़िया ने मर्म भरी आवाज में पेड़ को काट रहे लकड़हारे से कहा। ''चल भाग यहां से, देख नहीं रही हो, मैं पेड़ काट रहा हूं।'' लकड़हारे ने कर्कश आवाज़ में कहा। ''इस पेड़ पर बरसों से हमारा परिवार रहता है।'' चिड़िया ने उसे समझाते हुए कहा।''तो मैं क्या करूं ? तेरे परिवार से मुझे क्या करना है?'' लकड़हारे ने क्रोध से कहा। ''धर्म के नाम पर इस पेड़ को मत काटो, पेड़ के कट जाने से मेरा सारा परिवार उजड़ जायेगा।'' चिड़िया की बात सुनकर लकड़हारे ने तर्क देते हुए कहा–''मैं भी तो अपने पुरूषार्थ का धर्म निभा रहा हूं। मुझे भी अपने परिवार का पेट भरना है।'' यह सुनकर चिड़िया की आंखों में आंसू आ गये। अपने परिवार को बचाने का संकल्प करते हुए चिड़िया ने लकड़हारे के अगले वार की ओर ध्यान लगा रखा। जैसे ही लकड़हारे का अगला वार पेड़ पर लगने वाला था, तभी चिड़िया ने उस पर छलांग लगा दी। उसी क्षण उसके शरीर के दो टुकड़े ज़मीन पर तड़पते हुए दिखाई देने लगे। पेड़ पर खून के चिन्ह देखकर–''अरे यह पेड़ तो अब अपवित्र हो चुका है।'' कहते हुए लकड़हारा वहां से चला गया। तभी सुनसान से वातावरण में पेड़ की ऊपरी शाखा से भूख से बिलखते हुए चिड़िया के नन्हें–नन्हें बच्चों की चिंव–चिंव की आवाजें गूंजने लगीं।

धर्म

सोपुर के पुल पर
कुछ कहा था
पीछे से उसने
शायद कश्मीरी में
मुड़ा था मैं यन्त्रवत।

भौरों के छते से
ताजा टपके शहद सी
मीठी बोली और
उसकी मुस्कान
उगते चन्द्र सी
फैल गई थी मुझमें।

तब जैसे
फैल गई थी चहुंओर
गुनगुनी उष्णता
और जैसे
पिघल गई थी
पूरी की पूरी
कश्मीर में बर्फ।

उस सुनहरे मौसम में
मेरी आंखों का
समंदर भी
बिल्कुल वैसा ही था
जैसा था उसकी
आंखों का समंदर।

ठीक उतनी ही थी
उसकी सांसों की गति
जितनी थी
मेरी सांसों की गति।

पर अचानक
गोली से बिंधी सी
फड़फड़ाती—तड़पती
लौट गई थी शबीना
जेहलम ले गई बहाकर
सब कुछ जैसे।

चूंकि जान बूझकर
कम्बख्त दोस्त ने
पुकारा जो था
मेरा हिन्दू नाम।

कृष्ण चन्द्र महादेविया
अधीक्षक
विकास खण्ड पधर
जिला मण्डी
हि0 प्र0 175012

तुम्हें नहीं पता

तुम्हें नहीं पता
उस पीड़ा का
बच्चा जनती बार
होती है जो
औरत को

तुम्हें नहीं पता
उस भीतरी चोट का
जिसे देता है अध्यापक
खड़ा कर कक्षा में
कई बार ट्राइब पुकारते।

तुम्हें नहीं पता
बाबजूद भी
भारी फसल के
गेहूं और गन्ने का
होता है आयात।

तुम्हें नहीं पता
छिनती है जब
कृषि भूमि—जंगल
पहाड़ और नदियां
कम्पनियों के पक्ष में
किसान करता है आत्महत्या
और होते हैं पैदा
नक्सलवादी।

हिमालय

विश्व पटल पर इसका नजारा,
बहुत ही प्यारा है।
हिमालय हमारा गौरव है,
और हम सब का प्यारा है।।
यह हमारा मस्तक है,
और हिम से ढका हुआ।
रक्षा करता सदा हमारी,
ऊपर वाले की दुआ है।।
सभी वन्य—जीवों का
बहुत सुन्दर यह आवास है।
अनेकता में एकता का,
कराता यह आभास है।।
यहां अनेक जड़ी—बूटियां मिलती
और मिलते फल—फूल के उपहार।
जीवन में कभी चुका नहीं सकते,
हम इसका उपकार।।
इसे स्वच्छ रखें, प्रदूषण मुक्त रखें,
और शिक्षा यह ले पायें।
ऊंच—नीच का भेद मिटाकर,
सबको गले लगायें।।

डॉ. जगदीशचंद्र वर्मा
सैनिक स्कूल घोड़ाखाल
जिला—नैनीताल, उ.ख.
मो.—09761709361

चक्रव्यूह

कभी न किया बुरा किसी का, न किसी का अहित कर रहा हूं मैं।
खतरा नहीं है दुश्मनों से , डर—डर कर अपनों से जी रहा हूं मैं।
कुरूक्षेत्र में पड़ गया हूं अकेला मैं आज।
गिरधारी के भरोसे जी रहा हूं मैं।।

गुरू द्रोण की चक्रव्यूह रचना का दुर्भाग्यपूर्ण अंत हुआ।
छल—कपट से अभिमन्यू का देखो वध हुआ।
वीर बालक फंस गया कौरवों के मायाजाल में, अर्जुन के हाथों जयद्रथ का देखो अंत हुआ।

आज अर्जुन जैसा नहीं है धनुर्धर, न ही भीम जैसा बलवान है।
कृष्ण जैसा नहीं है सारथी, न ही उनके जैसा भगवान है।
गणतंत्र में षड़यंत्र का यंत्र, प्रयोग कर रहे हैं वो लोग।
जिनके लिए न्यौछावर की हमने जान है।।

हाइकू

जल तरंग
इंद्रधनुष रंग
मन पतंग।

मखमल में
टाट पर पैबंद
बेजान रिश्ते।

गुरू की बानी
सदियों से पुरानी
जग नग मानी।

रंग महल
बंद नौ दरवाजे
भ्रमित सारे।

स्वप्न भी छल
अंतर्मन में बल
जग सरल।

विश्व सृजन
पावन तन मन
हर जीवन।

भयभीत हूं
अमानुषता संग
शांति है भंग।

आग ही आग
नफरत का राग
अब तो जाग

जग की माया
हाथ न कुछ आया
मृग तृष्णा से।

सुंदर तन
मन का मधुवन
निहारे जन।

सिंदूरी शाम
सागर के किनारे
नया आयाम।

तपस्वी मन
ध्यान की गहराई
ज्ञान सघन।

मजबूरी

मैं कुल्हाड़ी लटकाकर
कंधे पर
प्रथम सूर्य रश्मि के संग
पहुंचा अरण्य में।
हरे भरे जंगल के मध्य
मुझ सा तलाशा,
जिसके पास था केवल
गमों का बसेरा।

एक अभागे के अंग–प्रत्यंग पर
किया प्रहार
मुझे जुगाड़ना था आहार,
दो गठरी बांध
कंधों पर उठाया।
दुपहरी के समय में
धरती की तपन,
कांटों की चुभन से
गम के साये को रौंदते,
शहर–शहर, गली–गली,
चिल्लाता फिरा
लकड़ी ले लो......!
लकड़ी ले लो......!
बड़ी मशक्कत से उन्हें
कुछ कौड़ियों में ही बेचा,
तब जाकर मेरे पेट की
आग बुझी।

ग़र मैंने उसका
न उजाड़ा होता आवास
तो बरकरार रहता सदा
मेरा उपवास।

भूख मिटाना जरूरी है
जंगल उजाड़ना
मेरी मजबूरी है।

पुरषोत्तम चंद्राकर
शिक्षक आवास कालोनी
शा.कन्या उ.मा.वि. बीजापुर छ.ग.
मो.–09479158525

हाइकू

हाइकू लघु
अभिव्यक्ति सटीक
सशक्त विधा।

कविता वही
जो भावबोध देय
बाकी की हेय।

अपराध के
आक्रोश से उपजी
महिला शक्ति।

अपना दुःख
किसी से मत कहो
लोग हंसेंगे।

बांटो नेमतें
जो मिली प्रभु द्वारा
खुशी मिलेगी।

शिक्षित बेटी
परिवार गढ़ती
विकास तय।

यह मेरा है
वह पराया होगा
विकृत भाव।

सरिता मिली
सागर उल्लास में
गरजा खूब।

कोमल दूब
पांवो से दबकर
उमगती है।

वृद्ध मां बाप
तुम्हारे भगवान
सहेजो पूजो।

दान उसे दो
जिसकी है पात्रता
सबको नहीं।

नन्हा है बीज
लेकिन फाड़ता है
धरा की छाती।

दुःख आयेंगे
और मांजेंगे तुम्हे
संघर्ष हेतु।

पेट है तो क्या
भीख मांगोगे तुम!
याचना पाप।

खामोश व्यक्ति
अपने अंतर में
शोर पालता।

डॉ. रघुनंदन चिले,
232, मागंज वार्ड नं0:1, दमोह
म0प्र0 470661, मो–9425096088

तपती दोपहरी

बियावन कानन है तपती दोपहरी
चिट—चिटिर करती फुदकती गिलहरी
बरगद की डाली में यहां—वहां जाती
बगल से महुआ चुन—चुनकर लाती।

पास उसके बैठी है कोयल दीवानी
पिहू—पिहू रटती पपीहा मस्तानी
जब सुनाई देती किदर्री की तान
तब भान होता है, है ये बियावान।

झिंगुर भी चिकी—मिकी राग है सुनाता
लम्पुछिया फुदक—फुदक है मन को भाता
दूर—दूर मृगतृष्णा ही नजर आती
ऐसे में छाया ही मन को भाती।

इस निर्जन कानन का बरगद छतनार
लगता है यहां का पहरेदार
छोटे—बड़े पंछी यहां उड़कर आते
अपनी—अपनी, अलग—अलग धुन है सुनाते।

गरम—गरम, सांय—सांय चलती पुरवइया
तन—मन शीतल करती बरगद की छंइया
आते—जाते पथिक यहां करते विश्राम
तब जाते—ढलती दोपहरी की घाम।

चौकड़ी भरते दिखते कभी मृग छौने
ऊंचे—ऊंचे पेड़ तले लगते हैं बौने
कठफोड़वा ठक्क—ठक्क ताल है बजाता
पुक्क—पुक्क कर पुक्का सुर है मिलाता।

कौन ये गीतकार छेड़े हैं गीत
संग होती ऐसे में कोई मनमीत
तपती दोपहरी भी लगती तब न्यारी
गोदी सिर रख सहलाती प्यारी।

हरेन्द्र यादव
सेवानिवृत्त वन क्षेत्रपाल
सरगीपालपारा
कोण्डागांव, छ.ग.
मो.—09424291952

मैं और मेरी कलम

मैं
और मेरी कलम
चलते हैं दोनो साथ—साथ।
कभी— पतझर
कभी—बहारों की तलाश में
कभी—सेम्हल, टेसू
गुलमोहर की आस में
चलते हैं
दोनों साथ—साथ
कभी—भंवरों के साथ गुनगुनाते हैं
कभी—कलियों संग मुस्काते हैं
कभी—चिड़ियों की चहक में
मन बहलाते हैं।
कभी—उनके राग में राग मिलाते हैं
कभी—देख आते हैं
खद्दर की झोपड़ी
उसमें निश्चिन्त पसरे, उघरे
पिचके पेट
कभी—बढ़ती मंहगाई
चीजों के बढ़ते रेट
घूसखोर, चापलूस
लोभी धन्ना सेठ
कभी—चिन्गारी से
शोलों तक का सफर
कभी—जमीन से आकाश तक
खो जाते हैं,
तारा मण्डल में
उल्का पिण्डों की तालाश में।
मैं
और मेरी कलम
कभी—बारूद की गंध लने
पहुंच जाते हैं सीमा पार
और देख आते हैं
कायराना हरकत
उस पार की
मैं
और मेरी कलम
चलते हैं साथ—साथ

पुस्तक अंश

अनोखा सफर

दण्डकारण्य भूमि में मेरा जन्म हुआ। मेरे मुखिया जगदु ने मेरा पालन पोषण किया। अंचल की जीवन दायिनी नदी इंद्रावती ने मेरी प्यास बुझायी। वनाच्छादित दुर्गम क्षेत्र होने के कारण मुझ तक पहुंचना संभव नहीं था। मेरे आस पास जंगली हिंसक पशुओं का वास था। उस जमाने में यहां मेरे मुखिया जगदु का निवास हुआ करता था। संपूर्ण क्षेत्र घनघोर वनों से आच्छादित था। हिंसक पशुओं का डर बना हुआ था।

लगभग 240 वर्ष पुरानी बात है। मेरे मुखिया जगदु के आंमत्रण पर एक दिन बस्तर के राजा दलपतदेव इस क्षेत्र में शिकार खेलने पहुंचे। वर्तमान में राजमहल स्थित है उसी जगह राजा खड़े थे। तब एक घटना घटित हुई। राजा के शिकारी कुत्ते खरगोश का शिकार करने में असमर्थ नजर आये। इस घटना के बाद राजा दलपतदेव ने बस्तर से जगदुगुड़ा राजधानी स्थानांतरित किया। सुरक्षा की दृष्टि से यह स्थल राजधानी के लिये उपयुक्त समझा गया। मेरे मुखिया जगदु पर राजा कृतज्ञ हुए और जगदु की इष्टदेवी पूज्यनीय हुई।

मेरे हृदय में पहले राजा का साधारण निवास हुआ करता था बाद में मैंने राजमहल को भी अपने हृदय में बसा लिया। मैंने कभी सोचा नहीं था कि कभी छोटे से कस्बे से राजधानी बन जाऊंगा । जैसे–जैसे समय बदलता गया मैं शहर के रूप में नजर आने लगा और लोग मुझे जगदुगुड़ा के स्थान पर जगदलपुर सम्बोधित करने लगे।

उम्र बढ़ने के साथ मेरा बड़प्पन झलकने लगा। बाद में मुझे चौराहों के नगर के रूप में ख्याति मिली। मुझे देश विदेश के लोग सबसे बड़े रियासत के रूप में जानने लगे। बस्तर रियासत के राजा दलपतदेव, दरियावदेव, महिपालदेव, भोपालदेव, भैरमदेव, रूद्रप्रतापदेव, महारानी प्रफुल्ल कुमारी देवी एवं रियासत के अंतिम शासक महाराजा प्रवीरचंद्र भंजदेव को शासन करते देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ।

शासन प्रशासन के उतार चढ़ाव को मैंने देखा। अंग्रेजों के अत्याचारों एवं सन् 1910 ई0 में भूमकाल नामक आदिवासी संघर्ष को भी मैंने देखा। राजा दलपतदेव को जगदलपुर में पहली बार दशहरा पर्व मनाते हुए देखा। जगदलपुर शहर के संस्थापक दलपतदेव के शासन काल में दलपत सागर एवं गंगा मुण्डा तालाब का निर्माण कराया गया था। आजादी के बाद बस्तर रियासत का भारत संघ में विलय हो गया। इसके बाद राजतंत्र से लोकतंत्र में आए परिवर्तन को भी मैंने देखा। धीरे–धीरे मेरा दायरा बढ़ता गया। अब मुझे संभाग मुख्यालय का दर्जा प्राप्त हो चुका है और मैं लगभग 242 वर्ष का हो चुका हूं। इस अवसर पर मेरे हृदय में बसे सभी लोगों को मेरी शुभकामनाएं।

आपका – जगदलपुर

शिवशंकर कुटारे
चित्रकोट रोड
जगदलपुर (छ0ग0)
मो. 9406294695

नरेन्द्र कुमार की लघुकथा

'देशाटन'

लगभग चालीस दिनों से 'पैसेंजर ट्रेन' से देश घूमने निकले प्रभात कुमार आज असमंजस में पड़ गये कि यहाँ सियालदा से आगे घूमने जायें या यहीं रूककर बस जायें। क्योंकि प्रश्न ऐसा ही था– आप भी लिख देना धंसी आंखे, पिचके पेट, हड्डियों का पुतला आदि। इस प्रगतिशील देश में तस्वीरों सहित छाप देना। आपको तो भरपूर रायल्टी मिलेगी, पर इनकी कौन सुध लेगा। पूछने से मालूम पड़ा, यहाँ भात नहीं हो रहा, पाँच सालों से अकाल है, कुछ पैदा भी हो जाये तो माओवादी जला देते हैं। सरकार से गुहार करो तो गोलियों से मार रही है, तो क्या वे जिन्दा हैं? यहां मौत भी नहीं मांग सकते, कुछ किया तो जेल में डाल जमानत पर रिहा कर देते हैं, मानो खाना भारी हो।

यह सब देख देश की तस्वीर का वह काला सच देख, उसे अपने जीवन के तीस साल का सुहाना सफर भी बेकार लगा। और उसने वहीं रहने का प्रण किया और घर मैसेज भेज दिया–

''प्रिये, आपके साथ गुजारे जीवन की सुखद यादों के साथ आज आपसे क्षमा के साथ कुछ साल अपने देशवासियों की मदद करने हेतु यहां सियालदा में बस रहा हूँ। यहाँ से कब वापसी होगी आज नहीं बता सकता। हाँ, आप यहाँ न आयें, क्योंकि आप हमसे भी ज्यादा भावुक हैं, देख नहीं पाओगी। इस तरह आज चार साल में प्रभात कुमार सियालदा के बाहर गाँवों की तस्वीर बदल जिला परिषद् का अध्यक्ष बन गया। क्या था क्या बन गया।

नरेन्द्र कुमार
सी–004 उत्कर्ष अनुराधा
सिविल लाइन्स नागपुर
मो.–07875761187

नरेन्द्र पाढ़ी
रहमान गली, पथरागुड़ा
जगदलपुर, छ.ग.–494001
मो–09425536514

बस्तर क्षेत्र के समृद्ध साहित्य में यहां की बोलियों में रचे गये गीतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यहां के लोकगीतों में स्थानीय तीज–त्योहार और विवाह का वर्णन बहुतायत में होता है। उसके अलावा अपने आसपास का यूं चिंतन भी होता है।
प्रस्तुत हल्बी गीत और उसका हिन्दी अनुवाद कवि द्वारा किया गया है। इस कविता में चित्रित चिंतन हृदय में एक कसक सी पैदा करता है। एक ही समय और एक ही स्थान पर कैसी विरोधाभासी स्थितियां विद्‌यमान हैं।

ढंगनाच

गोरसी चो इंगरा के
कोदाउन–कोदाउन
बिहाव–पार्टी चो ढंगनाच के
सुरता करेंसे।

काल चो करलानी गोठ के
सुरता करेंसे।
जुठा–अंयठा काजे टटालो
नांगड़ा पिला मन के दखेंसे।

सुट–बुट संगे मोटरकार ने
उतरतो सवकार के दखेंसे।
भात काजे टटालो
डुंडा कोन्दा सियान के दखेंसे।

लहु खादलो असन टोण्ड रचालो
बायले मन के दखेंसे।
जुठा थारी उठातोर टोण्ड सुखलो
डोकरी मन के दखेंसे।

दुनो हाते मास तितड़तोर
पेटलामन के दखेंसे।
भुक काजे सुखलो पेट चो
करलानी के सुनेंसे।

मंद खादलो हिरो मन चो
ढंगनाच के बले दखेंसे
लेकी मन के कोहनी ने
ठटातोर के बले दखेंसे।

रंग–रंग चो लुगा पिन्दलो
बायले मन के दखेंसे।
फाटलो लुगा ने देहें के
लुकातो बायले मन के दखेंसे।

ए पिरथी ने मनुख, मनुख चो
फरक के दखेंसे।
अदांय गोरसी नो इंगरा के
लाखड़ी होतो के दखेंसे।

नखरा

अंगीठी के अंगार को
कुरेद–कुरेद कर
शादी ब्याह की पार्टी के
नखरों को याद कर रहा हूं।

कल की दुखद बातों को
याद कर रहा हूं।
जूठन और बचे खाने के इतजार में
नंग–धडंग बच्चों को देख रहा हूं।

सूट–बूट पहने कार से
उतरते साहूकारों को देख रहा हूं।
खाने के इंतजार में
बैठे कोन्दा बुढ्ढे को देख रहा हूं।

खून चूसे जैसे होंठ रचाई
महिलाओं को देख रहा हूं।
जूठी थालियां समेटती सूखे मुंह वाली
बुढ़ियों को देख रहा हूं।

दोनों हाथों से पकड़कर मांस खाते
बड़े पेट वालों को देख रहा हूं।
भूख से बिलखते लोगों की
व्याकुलता देख रहा हूं।

शराब में डूबे हीरो लड़कों को
देख रहा हूं।
लड़कियों को कुहनियों से टकराते
लड़कों को देख रहा हूं।

रंग–बिरंगी साड़ियां पहनी
महिलाओं को देख रहा हूं।
फटी साड़ियों में देह को
छुपाती महिलाओं को देख रहा हूं।

इसी धरती में मनुष्य–मनुष्य के
अंतर को देख रहा हूं।
अब, अंगीठी के अंगार को
राख बनते देख रहा हूं।

शिवेन्द्र यादव
केन्द्रीय विद्यालय, हाटकचोरा
जगदलपुर
सं. शि. मोब.–9981019689

कल के खेल

कभी हम खेला करते थे
खिलौनों से,धूल–मिट्‌टी,पत्तों,डालों से
खुले मैंदानों में।
बाबा बताते हैं
वो भी ऐसे ही खेला करते थे,
पर आज मेरा बाबू(बच्चा)
खेलता है
विद्‌युत उपकरणों से
घर के अंदर
कम्प्यूटर और मोबाइलों से।
कल इनके बाबू
किससे खेलेंगे
उपकरणों से, खिलौनों से
पत्तों, डालों से
या ?
शायद अतीत की कहानी
उन्हें तब याद आयेगी
जब समय की नाव
सागर पार कर जायेगी।

दोस्ती :– एक अनोखा रिश्ता

कु. अंजली सिन्हा
बी.ए. कामर्स फर्स्ट ईयर
शंकराचार्य कालेज
दुर्ग, छ.ग.

'दोस्ती'–कहने को तो एक छोटा सा शब्द है, पर अगर इसके मायने देखे जाएं तो इसे सिर्फ एक शब्द तक सीमित नहीं रखा जा सकता। क्या है यह रिश्ता जो दो अनजान लोगों को एक–दूसरे के इतने करीब ले आता है मानों वे सदियों से एक–दूसरे को जानते हों। कैसा है यह रिश्ता, जो निस्वार्थ है, जिसमें दो लोग अपने सुख–दुःख बिना हिचकिचाहट के आपस में बाँट कर, दुनिया की सारी बातें भुलाकर एक दूसरे का साथ पाकर ही सुखी रहते हैं।

यूँ देखा जाए तो आज यह दुनिया इतनी व्यस्त हो चली है कि लोगों को अपने घर–परिवार के लिए भी फुर्सत नहीं है। लोगों को घर–परिवार से दूर होकर काम, पढ़ाई एवं अन्य चीजों के लिए बाहर, अलग अपने परिवार से रहना पड़ता है। तब अगर कभी हम मुश्किल में पड़ जाएं तब हमारे साथ कौन होता है ?'दोस्त'– यह एक ऐसा इंसान हैं, जिसके जीवन में हो तो वह सबसे धनवान होता है। कहने के लिए तो बस यह ढाई अक्षर का शब्द है, परंतु इस शब्द में छिपे व्यक्ति का कोई मोल नहीं है। वह अनमोल है। 'दोस्त' से ही 'दोस्ती' शुरू होती है। यह एक अनजाना, अनसुना, निस्वार्थ परंतु खास रिश्ता होता है। हम भीड़ में अकेले चल रहे होते हैं, पर वह दोस्त ही है जो हमारा हाथ थाम कर हमें हौसला देते हैं कि "सब ठीक है", हमें अनजान दुनिया से लड़ने, उनसे तालमेल बिठाने में यह 'दोस्त' ही होते हैं, जो मदद करते हैं।

लोग अक्सर कहते हैं कि "माँ–बाप से बढ़कर दुनिया में कोई नहीं है" सत्य है। परंतु जो माँ–बाप की अनुपस्थिति में उनका काम करते हैं, क्या वे माँ–बाप से कम है ? यह दोस्त ही होते हैं जो हमारे माता–पिता की जगह हमें उसी प्रकार डाँटना, प्यार करना और सहयोग कर सकते हैं। इस बात को स्पष्ट करने के लिए एक छोटी सी दास्तां बताना चाहती हूँ। यह दास्तां एक लड़की की है जिसे पढ़ाई की वजह से परिवार से अलग रहना पड़ा।

" न्यू गर्ल इन द सिटी "

यह बात 2013, फरवरी की है। "अंजली " स्कूल से खुशी–खुशी घर आई। वो कोरबा में पढ़ती थी। उसके पिता सरकारी नौकरी करते थे। उनका 4 साल पहले स्थानांतरण हुआ था। शुरूआत में वह बेहद दुःखी रहती थी, क्योंकि उसे अपने दोस्तों को छोड़कर इतनी दूर आना पड़ा। पर जैसे–जैसे वक्त बीता उसके यहाँ बहुत–बहुत अच्छे दोस्त बन गए। वह बहुत खुश रहती थी। और उसने मन में ठान लिया था कि वो यहाँ से अब जाना नहीं चाहती थी, हाँलाकि वह यह बात जानती थी कि उसे एक दिन यहाँ से भी जाना होगा। पर बच्चे का दिल तो नादान होता है, उसकी उमर भी कितनी थी, मात्र 13 साल। जब उसने यह तय कर लिया था कि वह अब कोरबा छोड़कर नहीं जाना चाहती थी। आखिर कौन सी वो बात थी, जिसने उसे इस जगह के मोह में जकड़ रखा था। इसका सीधा–सादा जवाब है, 'दोस्त'! उसे वहाँ इतने अच्छे दोस्त मिले कि वह अपनी सारी परेशानियां भूल गई। उसे स्कूल में 'दोस्तों' के नाम पर एक नया परिवार मिल गया था। यह ऐसा परिवार था, जिससे वो अपना दुःख–दर्द बताती थी, जो वह अपने माता–पिता से भी नहीं बोल पाती थी।

अब उसे वहाँ चार साल हो गए थे। उस दिन वह घर आई, जैसे उसका दिन चलता था वैसा ही चला, पर जब शाम को उसके पापा घर आए मानो उस पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा हो, उसे यह पता चला कि उसके पिता का ट्राँसफर होने वाला है और इस बार पक्का है। वे शुरूवाती दिन थे उसके कक्षा बारहवीं के। वह यह सुनते ही सुन्न पड़ गई, मानो उसकी दुनिया खत्म सी हो गई हो, उसने रोना शुरू कर दिया। उसके मन में कई सवाल घूम रहे थे। पर वह उसका जवाब नहीं दे पा रही थी। आखिर कितने कठिन समय में उसे उस जगह से अलग किया जा रहा था। उसके पिता ने उसे प्यार से समझाया और बताया कि यही जीवन है। कोई भी चीज या फिर जगह को हम हमेशा जकड़ कर नहीं रख सकते। एक न एक दिन उसे छोड़ना ही होता है। यह है प्रकृति का नियम। परंतु उसके माँ–पिता, उसका दुःख नहीं समझ सकते थे। उसे पूरी दुनिया उजड़ी हुई सी दिखाई दे रही थी। कई सवाल मन में उठे– " मैं कैसे रह पाऊँगी उनके बिना ? क्या मुझे अब ऐसे दोस्त मिल पाएँगे ? मैं उन लोगों को कैसे यह बात बताऊँगी ?'' वगैरह–वगैरह। जितना वो अपने दोस्तों से प्यार करती थी उससे कहीं ज्यादा उसके दोस्त उसको मानते थे। किसी तरह उसने अपने आप को संभाला। पर जब वह दूसरे दिन स्कूल गई वह अपने आप को रोक नहीं पाई। वह बड़ी ही भावुक किस्म की लड़की थी। उसके दोस्तों ने उससे पूछा आखिर क्या हुआ है उसे ? उसने बड़ी धीमी आवाज, मन में बड़ा सा बोझ लिए जबाब दिया– ''पापा का ट्रांसफर हो गया है। मैं जा रही हूँ अब–" बस इतना कहते ही उसने अपनी नम आँखों से उनकी तरफ देखा, उसके दोस्त यह मानने को राजी ही नहीं थे कि वो जा रही है। उसके सारे दोस्त भी अपने आप को रोक नहीं पाए। उनकी भी आँखे नम हो गई। कितना विचित्र होता

है यह रिश्ता, अपने भाई–बहन, माँ–बाप से बढ़कर लगने लगते हैं। उसने शुरूआत में कभी नहीं सोचा था कि एक दिन ऐसा आएगा जब उसे यह जगह छोड़ते वक्त इतना कष्ट होगा। देखते–देखते समय बीतता चला गया। वो दिन आ गया जब उसे जाना था। अपने साथ यादों का पिटारा लिए वह जाने को तैयार थी। उसे कुछ भी पता नहीं था कि आगे उसके साथ क्या होने वाला है। भारत में बिछड़ने का समय बड़ा करूणापूर्ण होता है । उसके मन की स्थिति कोई बता नहीं सकता था यह वही जान रही थी कि वह किस दौर से गुजर रही थी। सबकी आँखे नम देखना, उसे और कमजोर कर रहा था। पर वह वक्त के हाथों मजबूर थी। आखिरकार जब वह जा रही थी उसे सारी यादें एक फिल्म की तरह दिखाई दे रही थी। उसके मन में सैलाब सा उठ रहा था। पर वह करती भी क्या ? वह और उसके पिता सरकार के हाथों मजबूर थे। एक कागज की चिठ्ठी ने सब इधर–उधर कर दिया। पर वह एक विश्वास लिए मन में थी कि सब कुछ ठीक होगा।

नयी जगह जाते ही उसे पता चला कि वहाँ स्कूल में जो विषय वह पढ़ रही थी, वह नहीं था। एक और मुसीबत सामने आ गई। वह दूसरे शहर में गई एडमिशन के लिए, पर वहाँ कहीं नहीं हो रहा था, क्योंकि वह पढ़ाई के सेशन के बीच में गई थी। वह सारी चीजें उसे अंदर ही अंदर तोड़ रही थी। पर वह अपनी यह हालत बताये भी तो किसे, माता–पिता को बता नहीं सकती थी, क्योंकि वे खुद ही परेशान थे, वो उनको और परेशान नहीं करना चाहती थी। ऐसे हालत में उसके दोस्तों ने ही उसका मनोबल बढ़ाया, उसे हौलसा दिया, वे पल–पल उससे वहाँ की जानकारियाँ लेते रहते थे। अंजली, एक बहुत नाजुक समय से गुजर रही थी आखिरकार वह कक्षा बारहवीं में थी। पर शायद उसकी दुआ भगवान ने सुनी और उसका अच्छे स्कूल में एडमिशन राजनांदगाँव के युगांतर पब्लिक स्कूल में हुआ। एक हफ्ता भी नहीं हुआ था अपने प्रियजनों से बिछड़े, अभी तो वह उनकी यादों से निकली भी नहीं थी कि उसे अपने माँ–पिता से अलग होना पड़ा। वह अंदर से टूट गई थी। मानों उसका भगवान पर से भरोसा उठ गया हो। जब उसे माता–पिता की सबसे ज्यादा जरूरत थी तभी उसे उनसे अलग रहना पड़ा। पर एक कहावत है न "जो होता है, अच्छे के लिए होता है।" वह बिल्कुल अकेली थी। उस नयी जगह में हॉंलाकि एक बात यह अच्छी हुई की उसे वहाँ रहना पड़ा, जिन्हें वह पहले से जानती थी। वे उसके पिता के दोस्त थे।

पहला दिन स्कूल का। सुबह 6 बजे वह अकेली सड़क पर यादों के 'फ्लेशबैक' देखते हुए, अपने स्कूल बस का इंतजार कर रही थी। उसके दिमाग में कोई "प्लानिंग" या "स्ट्रेटिजी" नहीं थी कि उसे नए स्कूल, नए लोगों के साथ कैसा बर्ताव करना है। उसने सब कुछ किस्मत पे छोड़ दिया। बस में चढ़ते ही उसे उसी के हम उम्र मिल गए। उन्होंने उससे उसका नाम पूछा, सब कुछ उन लोगों ने उसे स्कूल के बारे में बताया। शौम्या, श्रेया। ये दोनों उसके पहले दिन से ही सहेलियां बन गई थी और सबसे ज्यादा शौम्या। पहले ही दिन से उसने अंजली की बहुत मदद की, व्यवहार से सौम्या बातुनी, फ्रेंक थी। अंजली को उसमें एक नई दोस्त मिल गई थी। कहते हैं कि स्कूल का पहला और आखिरी दिन कभी 100 प्रतिशत अच्छा नहीं होता। पर अंजली के साथ सब कुछ अच्छा ही हुआ। पर उसे परेशानी तब हुई जब उसने स्कूल के टीचर को पढ़ाते हुए देखा। वह फिर से मायूस हो गई। क्योंकि उसे उनके पढ़ाने का तरीका पसंद नहीं आया और न ही वह कुछ समझ पा रही थी। वह हताश होकर बैठ गई। पर वह बड़ी ही आशावादी लड़की थी। वह कभी भी हिम्मत नहीं हारती थी। उसने अपने मन में ठान लिया था कि सफर बहुत कठिन है। उसे हर चीज के लिए तैयार रहना था।

अकेली शहर में वह, अपने पिता को दोषी ठहराती थी, वह अपना दुःख अपने पुराने दोस्तों से बाँटती थी। उन्होंने उसे बहुत सहारा दिया। कुछ बातें माँ–बाप कभी नहीं समझ सकते। उसने अपने पिता से बातचीत बहुत लिमिटेड कर दी थी। क्योंकि अंजली को बहुत कुछ कठिनाईयां सहनी पड़ रही थी। जो कोई नहीं समझ सकता था। पर यह 'दोस्ती' बड़ी कमाल की दवा है। हर जख्म को धीरे–धीरे भर देती है। अंजली की नए स्कूल में कुछ ही दिनों में अच्छी दोस्ती हो गई थी, सबसे। उसके सारे नए दोस्त उसकी बड़ी मदद करते थे। सबसे ज्यादा सौम्या, परिधी और पूजा। वह इन तीनों के बहुत करीब हो गई थी। साथ में बस से घर जाना, घूमना। हर चीजें वे सब साथ में करते थे। हर जगह उसे उन लोगों ने सहारा दिया। जब भी वह उदास होती थी। वे बिना उसके कुछ बोले ही उसे खुश करने लगते थे। वह अंजली को कभी यह महसूस नहीं होने देते थे कि वह नयी है। उसका यहाँ भी एक 'गैंग ऑफ फ्रेन्ड्स' बन गया था। जिसमें उसे काफी अपनापन लगता था। अखिरकार उन लोगों ने उसे अपनापन महसूस कराया। अब उसे स्कूल जाना अच्छा लगने लगा। पर उसे पढ़ाई में बड़ी दिक्कतें हुई। आज भी वह उस समय को याद नहीं करना चाहती।

देखते ही देखते स्कूल खत्म हो गया। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि उसे 'युगांतर पब्लिक स्कूल' और यहाँ के लोगों से लगाव भी हो पाएगा। किसी भी इंसान के लिए अनजान लोगों के बीच अपनी पहचान बनाना आसान नहीं होता। हर जगह माता–पिता साथ नहीं होते। अंततः 'दोस्त' ही है जो हमें सभालते हैं, हमें हौसला देते हैं।

बड़ा ही अनमोल रिश्ता होता है, ये ' दोस्ती'।

काव्य

साहस चींटी–सा चुपचाप यत्न

मन के गहरे कोने में
सहमा–सा एक बीज पड़ा है
सृष्टि के रहस्य को छुपाकर
पल्लवित होने की अमर चाह में
वह खड़ा है।

हौसला है वह
एक साहस
हसरतें उसकी
बार–बार उग आने की
अंधियारे की चट्टान को तोड़कर
भय से मुक्त होने की चाह में
अपयश के जटिल संकटों को तोड़कर
छोटे–छोटे डरों से घिरी जिन्दगी
मगर फिर भी मंजिल की तलाश में
भटकती राह
उठते कदम
जो पहले कभी न किया हो
उसे कर गुजरने का
अदम्य साहस।

सबकुछ नया
रास्ते नये, साहस नया
मान्यता नयी, उम्मीदें नयी

श्रीमती नन्दिनी प्रभाती
एच.आई.जी.–16
पारिजात केस्टल
रिंग रोड़ नंबर–2, गौरव
पथ बिलासपुर, छ.ग.
मो.–09826084197

पुराने पन्ने पलटकर
न देखने की कामना
साहस चींटी–सा चुपचाप यत्न
साहस हमेशा
शेर की दहाड़ ही हो
यह जरूरी नहीं
साहस एक चींटी–सा चुपचाप यत्न
भी तो हो सकता है।

चींटी.........
न देख पाने वाले से
रौंदे जाने का भय
लोग अक्सर गाली देते हैं
चाल चींटी को
मगर कछुआ भी कभी
जंग जीत लेता है
साहस चींटी का चुपचाप यत्न
लगन उसमें भी है
धुन उसमें भी है
कभी तो युग बदलेगा
मंजिल कभी तो मिलेगी
साहस चींटी–सा चुपचाप यत्न
रंग कभी तो चढ़ेगा
दुखों का बादल
कभी तो ढलेगा।।

महेशराजा की लघुकथाएं

वर्दी

वह चौराहे पर फल बेच रहा था।
एक व्यक्ति आकर उसे डांटने लगा, फिर मुफ्त मे फल मांगने लगा तो उसने मना कर दिया।
इस पर व्यक्ति बोला–मैं पुलिस वाला हूं, अभी वर्दी में नहीं हूं।
''वो मैं नहीं जानता साब! हम तो पुलिस वाले को वर्दी और डण्डे से ही पहचानते हैं, पहनकर आओ फिर मना थोड़े ही है।''

महेशराजा
वसन्त–51
कालेज रोड, महासमुन्द
छ.ग.–493445
मो.–09425201544

सेठजी का तर्क

सेठजी के द्वार से दो–तीन भिखारी बड़बड़ाते हुए निकले।
एक परिचित ने सेठजी से मजाक किया। क्यों सेठजी! परलोक सुधारने के लिए इन लोगों को कुछ दिया नहीं ?''
सेठजी बोले–''परलोक सुधारने के लिए ही तो एक दिन सोमवार तय किया है। पर भाया! रोज–रोज इन्हें दूं तो मेरा ये लोक भी बिगड़ जायेगा। फिर तो मैं भी सड़क पर आ जाऊंगा।''

मानव मुक्ति की कामना से छटपटाती कविताएँ :–

नवें दशक के बाद हिन्दी कविता में जिन कवियों ने अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज की उनमें युवा कवि भास्कर चौधुरी एक सुपरिचित नाम है जो विगत 22 वर्षों से ईमानदारी पूर्वक काव्य यात्रा में शामिल हैं।

जीवन के उबड़–खाबड़ पथरीले रास्तों से गुजरते भास्कर की कविताओं में समय की तल्ख सच्चाईयाँ अभिव्यंजित होती है। उनकी छोटी सी कविता दिल्ली हमारे दोहरे चरित्र को तार–तार कर देती है। यथा–हम कोस रहे हैं/ दिल्ली को/ और मुखातिब हैं/ दिल्ली की ओर/

कुम्हार के आवे में पकी हुई हांडियों की टनक कच्ची हांडियों की आवाज से अलग होती है अनुभव की आँच में पके भास्कर के शब्दों का गठन सामान्य शब्दों से भिन्न है। ऐसे ही पके हुए ठोस शब्दों से जब काव्य का सृजन होता है वह कृति टिकाऊ बन जाती है जो पाठकों से दूर तक रिश्ता कायम कर लेती है। देखिये उनकी कविता की बानगी, पिता मुझे भेजते रहे/ और स्वयं खाली होते रहे/ पिता आज भी खाली हैं/आज जब मैं भरा हुआ हूं/सोचने की बात है आज/जब हम भरे हुए हैं/ तब भी पिता क्यों खाली हैं। जो माँ बाप बेटे की पढ़ाई में अपना सर्वस्व अर्पित कर देते हैं और नौकरी लगने के बाद वही बेटा बुढ़ापे की लाठी नहीं बन पाता इस त्रासदी से पीड़ित समाज में हजारों माँ बाप मिल जाएँगे। इस कविता से वर्तमान युवा पीढ़ी का बुजुर्गों के प्रति असम्मान और गैर जवाबदारी की बात ध्वनित होती है। भास्कर की कविताओं में अनावश्यक विस्तार नहीं मिलता वे मितव्ययी हैं, वे शब्दों की शक्ति से भलीभाँति परिचित हैं। अतः एक कुशल कारीगर की तरह शब्दों की मजबूत ईट चुन–चुन कर कविता के सुन्दर महल तैयार करते हैं– बानगी के तौर पर देखिये उनकी ये कविता :– बच्चा जो आपके बच्चे का ध्यान रख रहा है/बच्ची जो लीप रही है/ आपका आँगन/ गणतंत्र दिवस तो उनका भी है/ मिठाई जो बाँट रही है/ यह कुछ हिस्सा तो उनका भी है। सहजता ही भाषा का सौदर्य है। भास्कर की काव्य भाषा आम जनों की बोलचाल की सरल भाषा है, उनकी कविताओं को समझने के लिए पाठकों को किसी डिक्शनरी की आवश्यकता नहीं पड़ती फलतः प्रथम पाठ से ही उनकी कविताएँ मन में घर कर लेती है। दृष्टव्य है– बेटी ने कहा/ माँ तुम्हारे चार हाथ क्यों नहीं है/ दो हाथ काम करने के लिए/ और दो मुझे गोद में लेने के लिए। एक सजग संवेदनशील कवि के माध्यम से समय अपने को अभिव्यक्त करता है उनकी पैनी दृष्टि उन कोनों अंतरों तक पहुंचती है, जहाँ सच्चाई छिपी हुई है। भास्कर एक सफल डॉक्टर की तरह वर्तमान विसंगतियों की चीर–फाड़कर निष्कर्श को समाज के सामने लाने के लिए कटिबद्ध है इसलिए वे लिखते हैं, मैं देखना चाहता हूँ कोलकाता/ कोलकाता का कोना–कोना/ मैं जाना चाहता हूँ वहाँ/जहाँ बजबजाता है जीवन। निश्चय ही यह वह भारत नहीं है जिसका स्वप्न हमारे पुरखों और स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने देखा था। भ्रष्टाचार और विलासिता में आकंठ डूबे जन प्रतिनिधियों की नजरों में मनुष्य का मूल्य सिर्फ एक वोट तक सीमित रह गया है, जन आकांक्षाओं का ख्याल न कर विकास के नाम पर अपनी जेबें भरना राष्ट्रीय शगल बन गया है। ऐसे नेताओं पर भास्कर व्यंग्य के तीक्ष्ण बाण चलाने से नहीं चूकते। देखिए उनकी बाढ़ कविता में यह दृश्य– आप जनाब/ कीजिए हवाई सर्वेक्षण/ शीशे की पीछे से/ लीजिये जायजा/ दूरबीन आँखों से सटाए/ डूब रहे हाथ पैरों को देखिए/ तैरते केलों के पेड़/ उस पर सवार हमें देखिये/ अंदाज लगाइये बाढ़ की विभिषिका का/ और लौट जाइये दिल्ली।

भास्कर की काव्य दुनिया बहुरंगी है, वे छोटे–बड़े कई विषयों पर अपनी कलम चलाते है, आतंकवादी बच्चों को नहीं मारते, सैनिक, मैं मुसलमान हूँ, पाकिस्तानी माँ की भारतीय बेटी, इजराइल अफगानिस्तानी बच्चों के लिए इत्यादी कविताओं की आवाज राष्ट्रीयता की हदों से निकलकर अन्तराष्ट्रीय हदों को छूती है, जिससे उनकी वैश्विक दृष्टि का पता चलता है।

सार्वजनिक मानव मुक्ति की कामना से छटपटाती भास्कर की कविताओं की जड़ें परम्परा की भूमि में गहरी धंसी हुई है। जो समकालीन हिन्दी कविता को एक नए आयाम देती है।

आलोच्च कृति
कुछ हिस्सा तो उनका भी है
कवि–भास्कर चौधुरी
प्रकाशक–संकल्प प्रकाशन
बागबाहराजिला–महासमुन्द (छ.ग.)
पिन–493449

निर्मल आनंद
ग्राम–कोमा (राजिम)
जिला गरियाबंद (छ.ग.)
493885
मो.–09754215362

संशय

एजेंट 'बी' के जूतों की आवाज उन्हें भी सुनाई न देती थी वे आखिर माने हुए जासूस ठहरे! वे बड़ी तेजी से सीढ़ियों पर चढ़ चीफ के चैम्बर की ओर जाने वाले चिकने फर्श पर चल रहे थे। उनके आने का संकेत चीफ को हो चुका था। लाल बत्ती जली–'आने दो।' हुकुम हुआ। गेट पर खड़े दरबान ने बड़े अदब से दरवाजा खोला, सलाम बजाया और तब तक झुका रहा जब तक वो भीतर पहुंच नहीं गये।

'वेलकम!' चीफ ने उनका स्वागत किया। चीफ के चेहरे पर मुस्कान, उत्सुकता और रौब, सब एक साथ झलक रहे थे। बैठने का इशारा हुआ। 'थैंक्स' कहते हुए एजेंट 'बी' ने बड़ी नफासत से अपनी कुर्सी संभाली।

'कैसा रहा आपरेशन.....?'–चीफ

'ठीक रहा...... अपनी ओर से......।'–एजेंट 'बी'

'मतलब....?'–चीफ

'मतलब शायद हमारा जो मिशन था वो पूरा ना हो पाये....।'–एजेंट 'बी'

'क्या बकते हो...?'–चीफ

'जी...जनाब! बात ही कुछ ऐसी है, जनता नाराज जरूर है मगर तख्ता पलट अभी दूर की कौड़ी है।'–एजेंट 'बी'

'मुझसे पहेलियों में बात मत करो...खुलकर कहो...सीधी जुबान में।'–चीफ

'मैं आपकी परेशानी समझ सकता हूं। बात ही कुछ ऐसी है। मसलन वहां अन्ना, रामदेव केजरीवाल विरोध कर रहे हैं...विद्रोह नहीं।'–एजेंट

'मगर रूपया गिरा है, भ्रष्टाचार, अपराध, हिन्दू–मुसलमान के बीच फसाद बढ़ते जा रहे हैं। अवाम में असंतोष है, आक्रोश है। भाषा, प्रांत, धर्म की दीवारें बढ़ती जा रही हैं। माफिया, नक्सलवाद, उल्फा सभी वहां सक्रिय हैं।'–चीफ

'जी....जनाब!'–एजेंट

'क्या वहां गुंडे, बदमाशों और भूख से लोगों का हाल बुरा नहीं...?'–चीफ

'जी....जनाब! है....!–एजेंट

'और क्या चाहिए! क्या जनता गृहयुद्ध नहीं करेगी?'–चीफ

'नो...! शायद यही तो मैं समझाना चाह रहा हूं।'–एजेंट

'अब समझने के लिए है ही क्या...।'–चीफ

'बात यह है कि.......तमाम विसंगतियों के बाद भी ये उस तरह के लोग हैं जो शायद रात को लोरी सुनकर सोते हैं... पड़ोसी अपना सुख–दुख बांटते हैं। जरूरतों के लिए लोग उधार लेते देते हैं। फसाद और झगड़े के बाद भी लोग एक हो जाते हैं।'–एजेंट

'असंभव! मगर यह कैसे मुमकिन है!'–चीफ का आश्चर्य बढ़ता जा रहा था। पानी का गिलास जो उसने घूंट मारने के लिए उठाया था, वह उसके हाथों में ही फंसा रहा।

'मुमकिन तो नहीं है, मगर ये लोग हैं जो नामुमकिन को भी मुमकिन बनाते हैं। पता नहीं हजारों दुख, निराशा, अत्याचार के बाद भी, ये खुश, न जाने क्यों और कैसे हो जाते हैं।'–एजेंट

'मसलन....?'–चीफ

'मसलन ये क्रिकेट मैच जीतकर भी दुनिया के गम भुला देते हैं–वे सचिन में अपना भगवान खोजते हैं। इस साल अच्छी बारीश हुई, इस बात पर भी वे खुश हो सकते हैं। उनकी खुशी हजारों अन्याय, गम, शोषण पर भारी है। वे बड़े अजीब हैं–कल तक जिस धर्मगुरू के वे शिष्य थे, आंख मूंदकर उनकी बातें मानते थे आज पाखण्ड की पोल खुल जाने पर उसकी निन्दा करके वे सब खुश हैं। है न अजीब!'–एजेंट

'समझा..! क्या वे लोग मुर्दा हैं या जिन्दादिल!'–चीफ

'शायद दोनों या कुछ और.....कह नहीं सकता!'–एजेंट

'तो यहां मिस्र या सीरिया जैसे हालात नहीं होने बाले!'–चीफ

'मुझे तो मुमकिन नहीं लगता है। हमारा आपेशन सफल नहीं रहा।'–एजेंट

'मुझे अब भी यकीन नहीं। उनके विश्वास, धैर्य, शांतिप्रियता का क्या हो सकता है–यह उनका कायरपन है या बहादुरी

....?'–चीफ

'नहीं जनाब.....! बात इससे कुछ बढ़कर है। उनके पास शायद कोई भगवान है–जो कभी भी अवतार ले सकता है। उनके तमाम दुखों को हर सकता है और यह भगवान हर घर में, अमीर–गरीब सबके भीतर मौजूद है........और इससे बढ़कर उनके लिए ये दुनिया सिर्फ माया है.....एक स्वप्न. ....!'–एजेंट

चीफ का सारा संशय जाता रहा। उनका ध्यान अब हाथों में फंसे पानी के गिलास पर गया।

देवेन्द्र कुमार मिश्रा
पाटनी कालोनी, भरत नगर,
चन्दनगाँव
छिन्दवाड़ा (म. प्र.) 480001
मो.–09425405022

काव्य

अभी बच्चे

अभी बच्चे ये राज समझ नहीं पाते हैं,
घरौंदे रेत के क्यूं बनके बिखर जाते हैं।

बड़े हैं आप तो बंटवारा नेक कीजिए,
हम गरीब बदी राह से उठाते हैं।

अमीर के लिए हर धूप हरी होती है,
गरीब, खेत तो बारिश में झुलस जाते हैं।

अब न गांव में वो गीत न चौपाल–अलाव,
हर तरफ़ शहर के अंदाज़ झिलमिलाते हैं।

मिले खुशी तो जमाने में बांट दे 'रंजन',
अकेले जाना अगर ग़म तुझे बुलाते हैं।

राजेन्द्र गायकवाड़ 'रंजन'
जेल अधीक्षक, केन्द्रीय
जेल, बस्तर, जगदलपुर
मो.–09425256196

रात यूं ही....

रात यूं ही बसर हो गई,
आरजू में सहर हो गई।

प्यार मैंने किया जिन्दगी,
और तू दर्दे सर हो गई।

बस जरा मुस्कुराये थे हम,
ये ख़ुशी भी ज़हर हो गई।

डूबना ही मुकद्दर में था,
हर दुआ बेअसर हो गई।

जो थे कल तलक तेरे 'रंजन',
उनकी नज़र भी बदनज़र हो गई।

कैसे–कैसे लोग

क्या बतायें कैसे–कैसे हमको, मिल जाते हैं लोग
हम रहमदिल क्या हुए, हर रोज़ छल जाते हैं लोग।

रात भर इस कशमकश में एक पल सोया नहीं,
देखते ही देखते कितने बदल जाते हैं लोग?

बदगुमानी का सफ़ीना दूर कितना जायेगा,
चंद थपेड़ों में ही साहिल पर उछल जाते हैं लोग।

बेवफ़ाओं के शहर में बावफ़ा मिलते नहीं,
खुद परस्ती की डगर में आदतन जाते हैं लोग...

अब तलक कायम है मेरी हसरतों का आशियां,
तोड़ने की कोशिशों में हाथ मल जाते हैं लोग।

ऐ दोस्त!

ऐ दोस्त! राज़े ग़म, सीने में छुपाये रखना,
बस, अपने होने का माहौल बनाये रखना।

जिन्दगी ख़ुशबुओं की राह में आ जायेगी,
अपनी हर सांस को गुलशन में सजाये रखना।

इसी से तुझको उजाले मिलेंगे फुरक़त में,
वफ़ा की राह में एक शमां जलाये रखना।

इश्क या प्यार मोहब्बत फ़क़त अल्फाज़ नहीं,
ये नेअ़मते हैं इन्हें दिल से लगाये रखना।

चांदनी रात, तलाशेगी तुमको ऐ 'रंजन',
चांद सा चेहरा निगाहों में बसाये रखना।

ग़ज़ल

1.

समंदर में तूफां ये मौजें ये धारें।
कहां चल दिये बेखुदी के ये मारे।

उसूलों की ख़ातिर जीये हैं मरे हैं,
हल़क से कहां तक कोई ज़हर उतारे।

नगर दोस्तों का चलन दुश्मनी का,
कहां पर जीयें हम मुहब्बत के मारे।

हुए तल्ख़ अब आईनों के भी तेवर,
बदलते हैं रह–रहकर चेहरे हमारे।

नहीं होने वाला है घर तेरा ख़ाली,
बुजुर्गों की ख़िदमत मुक़द्दर संवारे।

ख़्यालों की दुनिया ये ख़्वाबों की बस्ती,
बर्फ़ की छतों पे किसने सूरज उतारे।

विक्रम सोनी
नागपुर
मो.–09975741971

2.

घर से बाहर निकलने वाले थे।
हम तो बारिश में जलने वाले थे।

धूप को क्या समझ लिया तुमने,
चांद तारे निकलने वाले थे।

आंधियों ने हवा के रूख़ बदले,
दूर तक हम तो चलने वाले थें।

शाख़ पे जिसकी घोंसले न बने,
वो शजर कैसे फलने वाले थे।

मेरे जख़्मों के जितने मोती थे,
तेरी आंखों में ढलने वाले थे।

आदमी बनके आदमी ही रहूं,
रंग गिरगिट बदलने वाले थे।

3.

देख उनवां समझ फ़साने को।
सब हैं तय्यार संग उठाने को।

दिल दिमाग़ों का अब गुलाम हुआ,
होश वाले हैं दिल दुखाने को।

ग़म की आंखों के अश्क़ सूख गये,
रिश्ते होते हैं क्या निभाने को?

मेरा दुख मेरा है तेरा क्यों हो,
पास कुछ भी नहीं सुनाने को।

मेरे सज़दे तेरी रज़ा मांगे,
क्या करूं मैं तेरे ख़जाने को।

4.

अब नज़र मेरी बस सहर पर है।
देखना धूप किसके घर पर है।

ज़ख़्म भरना कोई गुनाह नहीं,
क्यों ये तोहमत मेरे ही सर पर है।

बरसों पहले जो हमसफ़र था मेरा,
उसकी ख़ुशबू मेरे सफ़र पर है।

अब ना चल पायेगा तेरा जादू,
हर नज़र बस तेरे हुनर पर है।

कैसे हक दूं कि वो मसीहा है,
जिसका हर वार मेरे सर पर है।

एक और यशोदा

श्रीमती खुर्शीद बानो ख़ान, जगदलपुर

बचपन की जब भी याद आई एक चेहरा साथ में जुड़ा पाई। वो चेहरा है चौकीदारीन का। हां यही कह कर हम लोग उसे बुलाते, कभी असली नाम जानने की जरूरत महसूस नहीं हुई। जब हमारा मकान बन रहा था तो उसकी देख–रेख के लिये एक चौकीदार रख लिया था। सदाशिव नाम था उसका। उसकी पत्नी को ही हम लोग चौकीदारीन कहने लगे।

चौकीदारीन एक औसत काठी की 50–55 वर्ष की ठेठ देहातन थी। मौसम और वक्त में तपा, कड़वे तेल से चुपड़ा कुछ–कुछ लम्बोतरा चेहरा। माथे पर बड़ी सी लाल बिन्दी और दूर तक सिन्दूर से भरी चौड़ी सीधी मांग। टखनों से ऊपर बंधी साड़ी, छींट का पोलका, मेहनत से खुरदरे पैरों में सांटि, हाथों में ढेर सारी रंग–बिरंगी मोटी–मोटी कांच की चूड़ियां, बीच–बीच मेंचांदी दो पाटले और मुरकु। गले में चांदी के सिक्कों की माला, हंसली। कमर में चार लड़ की करधन, बाहों में नाग मोड़ी और दोनों हाथ की ऊँगलियों में ताँबे–पीतल, गिलट और चांदी के बड़े छोटे छल्लें। सुतवां नाक में सोने की बड़ी बेसर और कान में सोने के फूल। माथे, कनाटि, ठोड़ी, बाँह और पैरों में गोदनों के निशान। जब हम पूछते यह क्यों किये, सो हंस कर जवाब देती कि मरने के बाद यही गोदने उसके साथ स्वर्ग जायेंगे। सोने चांदी के गहने यही रह जायेंगे। गहनों की ललक औरत मर कर भी नहीं छोड़ पाती।

अक्सर घर के अन्दर बाहर के काम में मशगूल रहती कभी–कभी गुनगुनाती पर अक्सर उदास लगती। जब कभी खिलखिला कर हंसती तो नीम की दातून के घंटो मांजे गये दांत दपदप करते। हम सब से बहुत प्यार करती, यहां तक कि घर के कुत्तों के जब नहला कर खाना देती तो गा–गा कर खिलाती या अगर कुत्तें नहीं खाते तो ऐसे बात करती मानों कोई बच्चों को फुसलाकर खिला रहा तो जैसे– ''चल–चल पप्पी जल्दी खा, देख बबा की गाड़ी आवत है, तोला घुमाये बर नई ले जाहीं।'' और हम लोग सब हंसते। हम बहुत छोटे थे जब अम्मा का इंतेकाल हुआ। जब हम रोते तो वह हम दोनों बहनों को अपने दोनों तरफ सुलाकर छत्तीसगढ़ी के लोक गीत सुनाया करती और बीच–बीच में समझाती जाती और तब तक सुनाती जब तक हम दोनों सो नहीं जाते।

उसके चेहरे को देख कर कोई भी अन्दाजा नहीं लगा सकता था कि उसनें अपनी जिन्दगी में कितनी तकलीफ पीड़ा, अवहेलना, तिरस्कार और अपमान झेले हैं। दुखों की भट्टी में तपकर वह एक ठोस मुकम्मल औरत बन गई थी। बहुत साल पहले शायद उसकी शादी के चार–पांच साल हो गये थे, पर उसकी गोद सुनी ही रही थी। बहुत देहाती इलाज करवाये, गुनिया, बेगा, जादू–टोना, टोटका, देवी–देवता, मन्नत–मुराद, पूजा–अर्चना सब किया गया पर उसकी गोद हरी न हो सकी। उसके माथे पर बांझ का ठप्पा लग गया। फिर उसने गांव के बच्चों से अपना दिल बहलाने की कोशिश की. पर जैसे कि गांव वालों का विश्वास कि बांझ दूसरों के बच्चों को खा जाती है सो कई बार उसकी गोद से बच्चे छीन लिये गये। वह फूट–फूट कर रोती, कभी–कभी तो इस कलंक को धोने के लिये ही वह मन्नत मानती कि सिर्फ कुछ दिनों के लिये ही सही उसकी गोद हरी कर दे चाहे फिर उसके बाद उस बच्चे को वापस ले ले। माँ न बनने के गम से ज्यादा उसे बांझ कहे जाने की पीड़ा थी।

उसे कहीं छट्टी छिल्ला में नहीं बुलाया जाता। अगर गर्भवती स्त्री के सामने पड़ जाती तो वे झट अपना पेट आँचल से छुपा लेती मानों अजन्मे बच्चे को उसकी नजर लग जायेगी। अगर किसी के घर उस वक्त पहुँच गई जब उसका बच्चा खाना खा रहा हो तो बच्चे की माँ की त्योरियाँ चढ़ जाती और फौरन बच्चे को आड़ में कर लेती। चौकीदारीन ये अपमान झेलती भोगती और दौड़कर अपने घर पहुँच कर मुँह में कपड़ा ठूँस कर बिलख पड़ती, पर वहाँ कोई नहीं होता उसके आँसू पोंछने वाला। खुद ही अपने आँसू पोंछकर गाँव वालों को हजार–हजार गाली देती और दैनिक कार्य में जुट जाती।

शुरू में पति उसे तसल्ली देता पर इतने साल गुजर जाने के बाद वह भी शायद हताश और निराश हो गया था। अब तो कई बार वह चौकीदारीन की शिकायत पर खीज उठता– बार–बार वही बात क्यों दोहराती है किस–किस से जा कर लड़ूं ? किस–किस का मुँह बंद करूँ? कई बार तो झुंझलाकर जोरदार पिटाई भी कर देता जमीन पर पड़ी–पड़ी देर तक रोती रहती, फिर, जब थक जाती तो अपने आप शांत हो जाती, न कोई मनाने वाला और न ही कोई दिलासा देने वाला। आँसू पोंछकर रसोई में घुस जाती और बुझती आग पर पड़ी राख फूंक कर हटाती मानों पति के लात घूसों को फूंक मारकर अपने शरीर से झाड़ रही हो और फिर जुट जाती खाना बनाने उसी पति के लिये जिसके दिल में उसके लिये अब कोई हमदर्दी नहीं थी और जिसने अभी–अभी उसके जिस्म पर अपनी क्रूरता के नक्शे का बना दिये थे। खाना पका कर दरवाजे की आड़ से अपराधियों की तरह उसे खाने के लिये पुकारती। यही आये दिन का किस्सा था।

चौकीदार सदाशिव सोमवार के भोर होते ही शहर चला जाता, जहाँ उसका काम चलता था और फिर शनिवार की शाम लौटता

अपनी हफ्ते भर की मजदूरी और जरूरत का सामान ले कर। इधर हफ्ते भर चौकीदारीन क्या–क्या झेलती इसका उसे गुमान तक नहीं था ? और न ही चौकीदारीन उसे अब बताती, जानती थी बताने से कोई फायदा नहीं। पति एक दिन रहता और फिर चल देता हफ्ते भर के लिये। चौकीदारीन भी गाँव में मजदूरी करती और अपना खाली वक्त पति के इन्तजार में गुजारती।

शनिवार की एक शाम, गोधुली की बेला, गाँव के सारे जानवर चारा चर कर लौट रहे थे। कच्ची पगडन्डी पर जानवरों के चलने से उड़ी धूल के बादल, घन्टियों की टुन–टुन और रम्भाने की आवाज और थका हारा लाल डूबता सूरज। ऐसे सम्मोहित वातावरण में इन्तजार बड़ा कठिन हो जाता है, आज चौकीदार आने वाला था। उसने सारा घर, आंगन लीप पोत कर चकाचक कर दिया था। और हाथ मुँह धोकर चौखट पर बैठकर शाम के लिये भाजी तोड़ रही थी और पति का बेसब्री से इन्तजार। हाथ भाजी तोड़ रहे थे और आँखे पगडन्डी के उस मोड़ पर टिकी थी जहाँ से उसे हमेशा सदाशिव आता हुआ नजर आता था।

जब काफी देर तक वह नहीं आया, और अंधेरा घिर गया, तब उठी, भगवान के आगे दिया जलाई और बड़ी श्रद्धा से हाँथ जोड़कर मन ही मन न जाने क्या कामना की फिर चिमनी जला कर ताक पर रख ही रही थी कि जानी पहचानी कदमों की आहट से उसके बुझे मन में खुशी की लहर दौड़ गई। मुड़कर देखी नीम उजाले में उसने चौकीदार को पहचान लिया। पर आज बड़ा बना संवरा लग रहा था। नई धोती, कुरता और कांधों पर नया गमछा। अभी वह आगे बढ़ कर उसके हाथ का झोला लेने वाली ही थी कि उसकी नजर चौकीदार के पीछे सर पर टिन की फूलदार पेटी लिये एक औरत पर पड़ी। इससे पहले कि वह कुछ सवाल करती, चौकीदार ने उस औरत से कहा– ''ये तेरी दीदी हैं'' वह औरत पेटी नीचे रख कर आगे बढ़ी और अपना आँचल दोनों हाँथों से पकड़कर झुककर चौकीदारीन का पांव पड़ ली। वह हक्की–बक्की रह गई। कुछ देर तो वह इस नई समस्या को समझ ही नहीं पाई और जब समझी तो बुक्का मारकर जमीन पर बैठ रोने लगी। दोनों का अनाप शनाप बकने लगी, ''तौर जव्हर हो जावे, मोर छाती ऊपर मूंग दरे बर सोंत ले आयहस।'' वे दोनों सर झुकाये चुपचाप चौकीदारीन की गालियाँ झेलते रहे। सदाशिव और वह औरत जिसका नाम सोनबती था इस परिस्थिति के लिये पूरी तरह तैयार थे। सोनबती एक कोने में जाकर बैठ गई। जोर–जोर से रोने की आवाज से अड़ोस–पड़ोस के लोग जमा हो गये। कुछ तो अन्दर ही आ गये और कुछ बाहर से ही ताँक–झाँक करने लगे। घर में नई औरत को अपराधियों की तरह बैठी पैर से जमीन कुरेदती देखकर माजरा समझ गये। सब को मालूम हो गया कि सदाशिव दूसरी औरत घर ले आया है और यह रोना इसी का विरोध हैं।

मर्द तो सारे वापस हो गये तब औरतों ने गांवों संभाला। ''काय करबे मरद जात के भरोसा नाहि, द्वारी ले बाहर जाये ता ओकर नियत बदल जाथे। ले जब असन रोय ले कुछ फायदा नाहि, अपन कलेजा ऊपर पत्थर रख ले, अऊर दुन्नु ला माफी दे दे, जो होइस ता होइस।'' उसके बाद एक–एक कर के चल दिये। सबके चले जाने के बाद चौकीदार अपनी चौकीदारीन के पास गया और फुसलाने की कोशिश करने लगा– ''देख ये तौर छोटी बहनी जसन रही, तें जसन चाहबे वसने रहौ, तौर सेवा करही अरूर दुन्नों मिल कर मजूरी करूहूँ.'' वगैरा वगैरा। चौकीदारीन का उबाल भी खत्म हो गया। उठकर रसोई में जा कर चूल्हा जलाकर दालभात, आलू का भुर्ता बनाई, फिर उन दोनों को खाने पर बुलाई, दोनो आकर बैठ गये। पहले तो चौकीदारीन मुंह फुलाई रही पर सोनबती के मनुहार पर वह भी खाने बैठ गई। लेकिन कौर उसके गले से नहीं उतर रहा था। इतना आसान नहीं था अपना एकाधिकार किसी के साथ बाँटना।

कुछ दिनों के बाद जिन्दगी फिर उसी ढर्रे चलने लगी। पहले तो सदाशिव हफ्ते के हफ्ते आता और सोमवार के पौ फटते काम पर चल देता। पर कुछ महीने बाद वह सोनबती को भी खाने–पीने की तकलीफ बताकर अपने साथ ले गया। चौकीदारीन का गुजारा गांव में भी मजदूरी कर के चलता रहा।

अभी कुछ महीने ही बीते थे कि सदाशिव और सोनबती वापस गाँव आ गये। उन्हें देखकर चौकीदारीन अपने मन की भड़ास निकालने ही वाली थी कि सोनबती की स्थिति देखकर उसके भीतर का गुबार शांत हो गया। सोनबती मां बनने वाली थी इसीलिये चौकीदार उसे छोड़ने लाया था। चौकीदारीन अपना सारा स्नेह जब उस पर लुटाने लगी, खूब सेवा करती। उसका उत्साह देखकर लगता मानों सोनबती नहीं चौकीदारीन मां बनने वाली हो। और एक दिन सोनबती ने एक नन्हें से जीव को जन्म दिया जिसे दाई बच्चे की गुदड़ी में लपेटकर चौकीदारीन की गोद में दी तो वह निहाल हो गई और खुशी से उसकी आँखों से आँसुओं की धार फूट पड़ी– ''मेरी कोख न सही, मेरी गोद तो भर ही भगवान ने। सारे गांव में करी के लड्डू बंटें।

बच्चे की सारी सेवा जतन दाई से न–करा खुद करती। अब उसे दम मारने की फुरसत नहीं थी। सुबह उठते ही पानी छिड़ककर बुहारती फिर गन्दे पोतड़े, गुदड़ों, चादर ले जा कर गांव के तालाब पर ले जाकर धोती, फिर खुद नहाकर घर आती, कपड़े सुखने डाल कर चूल्हा लीप कर चाय बनाती। तब तक सोनबती भी उठ जाती। उसे भी चाय

की तिमारदारी में जुट जाती। कड़वे तेल से मालिश करती, कन्डे की हल्की आँच से सेंकती फिर कपड़े से अंगोछ कर काजल लगा कर, कपड़े पहनाती। इस दौरान वह नन्हा भी अपनी बड़ी माँ के ममतामयी हाथों का खूब पहचान गया था। सारे क्रिया क्रम के चलते हूँ हाँ करते रहता।

सोनबती भी खुश रहती अपने बच्चे पर उसकी इतनी ममता देखकर, वह सिर्फ दूध पिलाने की मालकिन थी। ढेरों हिदायत दे कर चौकीदारीन मजदूरी के लिये निकल जाती। शाम को लौटने की इतनी जल्दी रहती कि दो पल ठहर किसी से बात नहीं करती। गांव वाले तरह–तरह की बातें करते वह एक कान से सुनती दूसरे से निकाल देती –''जलते हैं सब मेरी खुशी देख कर।''

पर उसकी खुशी ज्यादा दिन नहीं चली। जैसे ही सोनबती चलने फिरने लायक हुई, सदाशिव आया और दोनों माँ बच्चे को शहर वापस ले गया। बेचारी चौकीदारीन, बीच चौराहे पर ठगी सी खड़ी रह गई। वह तो सोच बैठी थी कि सोनबती और मुन्ना अब उसी के पास रहेंगे, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। चाहकर भी वह उन्हें रोक नहीं पाई। मुन्ने को सोनबती के हाथों में देते समय उसे ऐसा लगा मानो अपने शरीर से कलेजा ही निकाल कर दे रही है आज उसे पहचान हुई कि दूसरों के बच्चों को चाहे कितना भी दिल से लगाओं पर अपना नहीं बनता।

उन लोगों के चले जाने के बाद वह बहुत रोई। उस दिन उसके घर चूल्हा नहीं जला। चुप–चाप आँसू बहाती जमीन पर बोरा डाले पड़ी रही। रात भी भूखे पेट सो गई। सारी रात आधा सोई, आधा जागती रही। कई बार नींद में लगा मुन्ना रो रहा है और उसका हाथ उसे थपकी देने के लिये उठा पर खाली बिस्तर पर पड़ते ही उसकी नींद टूट गई। एक बार फिर आँसुओं का बांध टूट गया और सारी रात आँखों में ही कट गई। सुबह उठी तो थोड़ा सहज हो पाई। दैनिक कार्यो से निपट आई तब तक जोर की भूख लग गई। यह पापी पेट है जो आज आदमी को हर गम भूलने पर मजबूर करता है चौकीदारीन भी कल का बचा पेज खाई, घर को व्यवस्थित किया उसके बाद भी लगा आज कितना खाली समय बचा है और फिर वह मजदूरी पर निकल आई। वहाँ भी रह–रह कर मुन्ना याद आता रहा। फिर अपने ही दिल को तसल्ली देती––''उँह, किसी के बच्चे पर अपना क्या जोर ?''

साल नहीं बीता था कि सदाशिव सोनबती को दोबारा छोड़ गया। इस बार चौकीदारीन झुंझला उठी। उसे सिर्फ सेवा करने वाली दासी ही समझ रखा है दोनों ने। मतलब पड़ा तो चले आये और मतलब निकल गया तो पलट के नहीं पूछा कि कैसे जी रही हैं। वाह रे भाग्य।

इस तरह तीन बच्चे हुये। दो लड़के और एक लड़की। लड़की जब चार माह की ही थी कि एक दिन जवान सोनबती अपने बूढ़े पति को छोड़कर किसी प्रेमी के साथ भाग गई। सदाशिव ने उसे वापस लाने की बहुत कोशिश की। उसके तीनों मासूम बच्चों का वास्ता दिया पर वह निर्मोही वापस ही नहीं आई। आखिर थक हार कर एक बार फिर वह चौकीदारीन की शरण में ही पहुँचा। पहले तो उसने उन्हें अपनाने से ही इंकार कर दिया। दोनों को मन भर कर बुरा भला कहा, खूब रोई। दोनों भाई सहमें हुये सूखे मुंह से चौकीदारीन के फैसलों का इंतजार कर रहे थे। उनके गालों पर बहे आँसू की धार अभी भी नजर आ रही थी। बिन माँ के मासूम बच्चों का मुँह देखकर उसके दिल पर जमी बर्फ पिघल गई। और जैसे मुर्गी खतरा देखकर उसमें चूजों को परों में समेट लेती है, उसी तरह उसने भी उन्हें अपनी ममता के आंचल में समेट लिया।

वह दिन है और आज का दिन है किसी ने भी पलटकर गुजरे वक्त की याद नहीं किया। आज चौकीदारीन ही उन बच्चों के लिये सब कुछ थी। अगर चौकीदार किसी बात पर चौकीदारीन पर बिगड़ता तो सारे बच्चे मां की तरफ ही जाते। चौकीदारीन गद–गद हो जाती। अब उसे अपने बांझ होने का दुख तो दूर ,एहसास ही नहीं होता था। दूसरे की कोख से जन्में उसके इतने अपने हो जायेंगे उसने सपने में भी नहीं सोचा था। कौन कहता है ऊपर वाले के पास इंसाफ नहीं है कहां तो वह बेचारी इस एक बच्चे के लिये तरस रही थी और कहाँ उसकी झोली उम्मीद से ज्यादा भर गई।

दोनों लड़के पढ़ लिखकर पास की फैक्ट्री में नौकरी करने लगे और छोटी बहन का ब्याह कर दिया। सारी तनखा लाकर दोनों बेटे माँ के हाथ में दे देते, मां काला पीला कुछ भी करें, उन्हें सरोकार नहीं था और चौकीदारीन एक–एक पैसा दांतो से खींचकर रखती। उसे अपने बेटों की शादी जो करनी थी। और वह शुभ घड़ी भी आ गई जब धूम–धाम से चौकीदारीन के घर दो सुन्दर बहुयें आ गई।

बहुयें भी चौकीदारीन को वैसा ही मान सम्मान देती जैसे उनके पति देते। चौकीदारीन के प्यार की गागर तो हमेशा छलकती ही रहती। रोजमर्रा के काम चौकीदारीन अब भी करती, बहुयें उसके हाथ से काम छीन लेतीं पर वह कहती–– ''अगर तुम लोग काम नहीं करने दोगे तो मैं बहुत जल्दी मर जाऊंगी जो मैं नहीं चाहती। मैं तो अभी अपने पोते पोतियों को खिलाऊंगी

और इतने साल जीऊंगी कि तुम लोग मुझे टोकनी में ढांक सको। पर उसका यह अरमान पूरा नहीं हो सका। एक दिन सुबह–सुबह जब वह आंगन लीप रही थी उसका पैर गोबर पर पड़ा और वह फिसल गई, सर पत्थर से टकराया, बस मौत को बहाना मिल गया और चौकीदारीन बेहोशी की हालत में ही चल बसीं। बाप बेटों ने उसे बचाने की बहुत कोशिश की पर मायूसी ही हाथ लगी।

जब अर्थी उठी तो बेटे, बेटी, बहुओं और रिश्तेदारों का रो–रोकर बुरा हाल हो गया। कुछ बुजुर्ग महिलायें उन्हें समझानें लगी ––''अरे तुम सब रोते क्यों हो, चौकीदारीन तो बड़ी भाग्यवान थी जो सुहागन मरी। अपने पीछे भरा पूरा परिवार छोड़ कर जा रही हैं।'' देखा। कल तक जो बांझ, डायन और न जाने किन–किन नामों से बुलाई जाती थी आज उसे ही लोग भाग्यशालिनी परिवार वाली कह रहे थे। चौकीदारीन की तपस्या, त्याग, सेवा और ममता ने उसके बांझपन के कलंक को धो डाला था।

काव्य

जाने के कारण

मित्र!
यदि आप मित्र हैं तो
कहना चाहूंगा
मैं तेरी ओलती में खड़ा हूं
बाहर बरसात हो रही है
वह रूक जायेगी
मैं चला जाऊंगा।
कविता रूठ गई है
मैंने लीपिका ओढ़ लिया है
विषय मेरे अपने हैं
मात्राओं के साथ
छन्दों की तलाश है
समन्वय होते ही
मैं चला जाऊंगा।
छत के नीचे की
एक दीवार ढह गई है
स्थायी ने साथ नहीं दिया
चटखारे लेकर हंस रही है
मैं अपनी लेखनी खोज रहा हूं
संवर जाने के बाद
मैं चला जाऊंगा।
आकाश और मेरे बीच
बादल क्यूं आ जाते हैं
जब बरसात ही न हो तो
अपने विचारों को झकझोर कर
समन्दर अपना जल दे दे
अपना आराम पा लूं
मैं चला जाऊंगा।
संतानों ने नाप लिए हैं
मेरी आयु के पड़ाव
उन्हें गिनती आती है
दस के बाद नौ नहीं गिनेंगे
नौ के बाद शून्य उन्हें मालूम है
मैं अपना अंक पा लूं
मैं चला जाऊंगा।
समय ने अपने खण्डकाव्य में
स्पष्ट लिख रखा है
पल, घड़ी, दिवस, सप्ताह
माह, वर्ष, शताब्दी
और सहस्त्रशताब्दी
मेरा युग पूर्ण होते ही
मैं चला जाऊंगा।
कविताएं लिखी
दोहे–चौपाई भी लिखीं
खण्डकाव्य भी लिखा
बड़ी–छोटी कहानियां लिखीं
उपन्यास का भी समापन किया
आत्मकथा का अंत लिख लूं
मैं चला जाऊंगा।

नवल जायसवाल
प्रेमन, बी 201, सर्वधर्म
कोलार रोड,
भोपाल–462042
मो.–07552493840

ग़ज़ल

नसीम आलम नारवी
थाना चौक,
दल्ली राजहरा, छ.ग.
मो.–09406302583

मैं तो बिलकुल खुली किताब रहा,
उन को पढ़ने से इज्तिनाब रहा।।
ज़िन्दगी भर उन्हें हिजाब रहा,
उम्र भर शौक़ बेनक़ाब रहा।।
जितनी पाबन्दियां बढ़ाई गईं,
शौक़ उतना ही बेहिसाब रहा।।
रास्तों के हुजूम शाहिद है।
हर क़दम ताज़ा इंकिलाब रहा।।
वलवले कम नहीं हुए यारों,
गो कि जाता हुआ शबाब रहा।।
दुश्मनों की तो एक भी न चली,
वार अपनों का कामयाब रहा।।
अब अंधेरों की फ़िक्र कैसी 'नसीम'
देखो–देखो वो आफ़ताब रहा।।

उठिये और उठ के वक़्त के पंजे मरोड़िये
इंसानियत को यूं ही सिसकता न छोड़िये।।
बहते रहे जो वक़्त की रौ पर तो क्या किया
हां हो सके तो वक़्त के धारे को मोड़िये।।
कासा–ब–दस्त बैठे हैं शबनम की आस में
कहते हैं लोग हम से कि शोले निचोड़िये।।
मौका परस्तियों को सियासत का दे के नाम,
अख़्लाक के उसूल ख़ुदारा न तोड़िये।।
आइन्दा नस्लें जिन के सबक़ ले सकें 'नसीम'
कुर्बानियों की ऐसी रिवायत को छोड़िये।।

बस्तर के भित्तिचित्र कला भी हैं और इतिहास भी

पाषाणकाल से ही स्वयं को अभिव्यक्त करने का माध्यम बस्तर के आदिवासी समाज के पास उपलब्ध रहा है। अपनी अनुपम शैली तथा कलात्मक भाषा से बस्तर के आदिवासी समाज ने मनुष्य सभ्यता और उनके विकास के विभिन्न चरणों को लिपिबद्ध किया है। आप चित्रलिपि नाम देना चाहें अथवा शैलचित्र नामित करें किंतु मैं इसे लेखन कला के आरंभ, किसी भी लिपि के उद्‌भव के साथ साथ ऐसा अमरकंटक मानता हूँ जहाँ चित्रकला की विशाल नर्मदा का उद्‌गम स्थल है। दक्षिण बस्तर में अवस्थित अनेक पाषाणकालीन गुफायें यह बताती हैं कि वे ही आदि–मनुष्य का प्रारंभिक निवास थे।

चित्रकला और गुफाचित्रों पर चर्चा से पहले बस्तर में अवस्थित आदिमनुष्य के आरंभिक हथियारों तथा औजारों की एक झलक देखें। निम्न पुरापाषाण काल के मूठदार छुरे जिसकी नोक चोंच के आकार की हैं, इन्द्रावती, नारंगी और कांगेर नदियों के किनारे मिले हैं। मध्यपाषाणकाल में फ्लिट, चार्ट, जैस्पर, अगेट जैसे पत्थरों से बनाये गये तेज धार वाले हथियार इन्द्रावती नदी के किनारों पर खास कर खड़कघाट, कालीपुर, भाटेवाड़ा, देउरगाँव, गढ़चंदेला, घाटलोहंगा के पास मिले हैं, इन जगहों से अब भी कई तरह के खुरचन के यंत्र, अंडाकार मूठ वाला छुरा और छेद करने वाले औजार मिल रहे हैं। उत्तर–पाषाणकाल का आदमी छोटे और प्रयोग करने में आसान हथियार बनाने लगा था। इनको लकड़ी, हड्‌डी या मिट्‌टी की मूठों में फँसा कर बाँधा जाता था, यद्यपि हथियार व औजार चर्ट, जैस्पर या क्वार्ट्‌ज जैसे मजबूत पत्थरों से ही बनाए जाते थे। इस समय के अवशेष इन्द्रावती नदी के किनारों पर विशेष रूप से चित्रकोट, गढ़चंदेला तथा लोहंगा के आसपास प्राप्त होते हैं। उत्तर–पाषाण युग के समानांतर तथा उसके पश्चात धातुओं ने पत्थर के हथियारों और औजारों का स्थान ले लिया। यदि हथियारों और औजारों के प्रकार ध्यान से विवेचित किये जाते तो उनकी उत्पत्ति और विकास के चरणों में न केवल शिकार, आत्मरक्षा, खेती–बागानी अपितु कलात्मकता का भी बराबर योगदान रहा है। खुरचन के लिये प्रयोग में आने वाले मूठदार हथियार आदिमनुष्य की अभिव्यक्ति का साध्य भी बने और उसने शनैः शनैः अपनी मौखिक और सांकेतिक भाषा को पत्थरों, पर्वतों और गुफाओं पर अंकित करना आरंभ कर दिया।

आड़ी टेढ़ी खुरचनों से आरंभ हो कर परिष्कृत गुफाचित्रों तक कला की प्रारंभिक यात्रा बहुत रूचिकर जान पड़ती है। आदिमनुष्य तब अपनी जिज्ञासाओं का परिष्कार तथा नित नये आविष्कार कर रहा था जिन्हें वह अचरज से देखता तथा उसकी कोशिश होती कि अपने साथियों और संततियों को भी वह इस नव–ज्ञान से अवगत करा सके। वस्तुतः बस्तर में प्राप्त गुफाचित्रों में दैनिक जीवन विषयक संदर्भों का आलेखन गुफा की छत और दीवारों पर किया गया है। इन चित्रों में आखेट, मधुसंचय, नृत्य, पशुयुद्ध, अग्निपूजा, वनस्पति इत्यादि से सम्बन्धित दृश्य प्रस्तुत किये गये हैं। दक्षिण बस्तर में लगभग चार हजार फुट ऊँची नइपल्ली पहाड़ी के ऊपर चित्रित गुफा प्राप्त हुई है जिसमें हिरणों की आकृतियॉ बनी हुई हैं। मटनार गाँव के पास इन्द्रावती नदी के तट पर चित्रित पशु–पक्षियों तथ मनुष्य की हथेलियों के चित्रण से यहाँ किसी आलौकिक शक्ति की पूजा का संकेत मिलता है। अपनी खुरचन कला में प्रवीणता हासिल करने के पश्चात उसे प्रकृति ने ही रंगों का आरंभिक ज्ञान भी दिया होगा। फरसगाँव के समीप आलोर के निकट की पहाड़ी पर अनेक शैल चित्र बने हुए मिले हैं जो लाल रंग के हैं तथा मृदा वर्णों से चित्रित हैं, इन चित्रों को क्षरण के कारण स्पष्ट नहीं देखा जा सकता किंतु इनमे मानव और पशुओं की आकृति को आसानी से पहचाना जा सकता है।

अब यदि इन आरंभिक चित्रों का बारीकी से प्रेक्षण निरीक्षण करें तो यह ज्ञात होता है कि रेखांकन से चित्र तथा पहुँचने के पश्चात आदि–मनुष्य ने इनमे रंग भरने की भी कोशिश की होगी। भांति भांति के प्रयोगों के पश्चात उसे गेरू मिट्‌टी के रूप में एक ऐसा रंग मिल गया होगा जो न केवल लम्बे समय तक स्थायी रह सकता था अपितु उसकी चटखीली लाल तथा भूरे रंग की आभा भी प्रभावित करती थी। गेरू–मिट्‌टी की कृतियों ने गुफाचित्रों को सजीव करना प्रारंभ किया तथा कालांतर में अन्य प्राकृतिक रंगों का भी आविष्कार व प्रयोग होने लगा। उदाहरण के लिये पत्तियों के रस से हरा रंग निकाला गया होगा तो भांति भांति के फूलों ने लाल, नीले, बैंगनी, पीले आदि रंग प्रदान किये होंगे, काले रंग के लिये गाय के गोबर का प्रयोग किये जाने के भी संकेत प्राप्त होते हैं।

समय बदलता गया और चित्रों के विषय भी बदलते चले गये। अब इन चित्रों में मनुष्य का सामाजिक जीवन प्रविष्ट हो गया, उसका जन्म, उसकी मृत्यु, उसका बालपन, उसका बुढ़ापा, उसका प्रेम उसके यौन सम्बन्ध, उसकी वितृष्णा, उसकी नफरत उसके युद्ध, उसके वाद्‌य, उसके नृत्य, उसके देव, उसकी देवी, उसकी जिज्ञासायें उसके सपने यह सूची लगातार लम्बी होती चली गयी और ये भित्तिचित्र बस्तर की एक परिष्कृत और विश्व भर में सराही जाने वाली कला के रूप में अब हमारे सामने

है। भित्तिचित्रों बस्तर की एक परिष्कृत और विश्व भर में सराही जाने वाली कला के रूप में अब हमारे सामने है। भित्तिचित्रों में बस्तर के लोक जीवन ही नहीं लोक काव्यों को भी सम्पूर्णता से अभिव्यक्त किया हैं, जनश्रुतियाँ और कथाओं को मूर्तरूप देकर पीढ़ियों के लिये सुरक्षित करने का महति कार्य इन चित्रों के माध्यम से आज भी हो रहा है। बस्तर में भित्तिचित्र कला को 'गढ़ लिखना' अथवा 'गढ़ लेखन' करना भी कहा जाता रहा है। इन भित्तिचित्रों के केवल विषय ही नहीं बदले अपितु समय के साथ चित्र उकेरने और रंग भरने के माध्यम भी बदलते चले गये। गेरू मिट्टी, प्राकृतिक रंगों के साथ अब चावल का आंटा जिसे स्थानीय बोली में 'बाना' कहा जाता हैं, फर्श और दीवार के चित्रों को रंग व स्वरूप देने के कार्य में लिया जाने लगा। इस माध्यम से फर्श पर की जाने वाली चित्रकारी को 'बाना लिखना' कहते हैं। चावल के आटे को पानी में घोल लिया जाता है फिर कपड़े के टुकड़े की पोतनी बना कर उसी से मिट्टी अथवा लिपे हुए फर्श और दीवारों पर चित्रकारी करने की परम्परा बस्तर की थाती है।

एक मुकम्मल कला बनने के साथ ही गढ़लेखन अथवा भित्तिचित्र निर्माण को न केवल सम्मान ही प्राप्त हुआ अपितु उसके आयामों में भी परिवर्तन देखने को मिले। अब इन भित्तिचित्रों ने देवगुड़ियों को सजाया, घोटुलों के दरवाजों, फर्श और दीवारों को संवारा, महत्वपूर्ण व्यक्तियों के निवास की शोभा बनी। वेरियर एल्विन की पुस्तक ''दि डोर एण्ड वॉल डेकोरेशन'' में बस्तर के भित्तिचित्रों की महान कलायात्रा का सुन्दर वर्णन उपस्थित है। आधुनिक समय ने बस्तर की इस कला को दीवार और भूमि जैसे केनवास के अलावा कागज और कपड़े के माध्यम भी प्रदान किये हैं। प्राकृतिक रंगों के स्थान पर फेब्रिक रंग, पोस्टल कलर या ऑयल पेंट का उपयोग भी किया जाने लगा है। यद्‌यपि इस कला में अब भी परम्परागत विषयवस्तु को ही उकेरा जाता है किंतु समय के साथ आधुनिक बिम्बों के प्रयोग भी होने लगे हैं। जगदलपुर के मानवविज्ञान संग्रहालय में मेरी मुलाकात दो चित्रकारों महारूराम नेताम और बुधराम मरकाम से हुई। ये दोनों ही कोण्डागाँव से आये हुए कलाकार थे तथा आधुनिक माध्यमों और रंगों से अपनी विरासत कला का प्रदर्शन कर रहे थे। बस्तर की भित्तिकला के बड़े साधक हैं कोण्डागाँव निवासी श्री खेम वैष्णव जिन्होंने न केवल इसे अपनी साधना बनाया अपितु देश–विदेश में इस कला की ख्याति को पहुँचाया है। इस वर्ष आईपीएल–2013 में देहली देयर डेविल्स की क्रिकेट टीम का सांकेतिक बल्ला श्री खेम वैष्णव द्‌वारा ही डिजाईन किया गया था जिसमें उन्होंने बस्तर की भित्ति चित्र कला की अनेक बारीकियाँ प्रस्तुत की थीं, यह कला की अनंत यात्रा का एक महत्वपूर्ण पड़ाव भर है। यहाँ हमें ठहरकर सोचना होगा कि कुछ विवादास्पद कलाकृतियों के लिये लाखों–करोड़ो की कीमत अदा करने वाले लोग क्यों इस महति कला की ओर उपेक्षा की दृष्टि रखते हैं?

श्री राजीव रंजन प्रसाद
प्रबंधक (पर्यावरण)
कॉलोनी विभाग
इंदिरासागर पावर स्टेशन
नर्मदानगर,
जिला–खण्डवा–450119
मो.–07895624088

बस्तर पाति प्राप्त करें–

जगदलपुर– (1)अनुराग बुक डिपो, सिरासार चौक (2)मिश्रा बुक डिपो, नया बस स्टैण्ड (3)महावीर बुक डिपो, हाई स्कूल रोड
कोण्डागांव–(1)अमित बुक डिपो, बस स्टैण्ड
कांकेर–(1)विजय बुक डिपो
बिलासपुर–(1)रेल्वे बुक स्टॉल
रायपुर–(1)पारख न्यूज एजेन्सी, पुराना बस स्टैण्ड (2)अशोक बुक सेलर, जय स्तम्भ चौक (3)रामचंद बुक डिपो, पुराना बस स्टैण्ड ***भाटापारा***–(1)रेल्वे बुक स्टॉल
दुर्ग–(1)खेमका बुक डिपो ***दल्ली राजहरा***–(1)बुक स्टॉल, बस स्टैण्ड
इंदौर–(1)जैन बुक स्टॉल, सरवटे बस स्टैण्ड
छपरा–(1)मोहन बुक्स एण्ड न्यूज एजेन्सी, रोडवेज बस स्टैण्ड
पटना–(1)मुरारी प्रसाद बुक सेलर, न्यू मार्केट
रांची–(1)माडर्न बुक डिपो
पुर्णिया–(1)लालमुनी बुक स्टॉल, श्री लालमुनी शाह, आर.एन.शाह चौक

कफ़न

झोपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए हैं और अन्दर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसव वेदना में पछाड़ खा रही थी। रह—रहकर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज़ निकलती थी, कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई, सारा गाँव अन्धकार में लय हो गया था।

घीसू ने कहा 'मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया जा देख तो आ।'

माधव चिढ़कर बोला 'मरना ही तो है जल्दी मर क्यों नहीं जाती ? देखकर क्या करूँ?

'तू बड़ा बेदर्द है बे ! सालभर जिसके साथ सुख चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई!'

'मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ पाँव पटकना नहीं देखा जाता।'

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम करता। माधव इतना कामचोर था कि आधे घण्टे काम करता तो घण्टे भर चीलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी। घर में मुठ्ठी भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम न करने की कसम थी। जब दो चार फाके हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ लाता और माधव बाजार में बेच लाता और जब तक वह पैसे रहते दोनों इधर उधर मारे—मारे फिरते। गाँव में काम की कमी न थी। किसानों का गाँव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे। मगर इन दोनों को उसी वक्त बुलाते जब दो आदमियों से एक काम काम पाकर भी सन्तोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें सन्तोष और धैर्य के लिए, संयम और नियम की बिलकुल जरूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका! घर में मिट्टी के दो चार बर्तन के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढाँके हुए जिये जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त कर्ज से लदे हुए गालियाँ भी खाते, मार भी खाते मगर कोई गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिलकुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ न कुछ कर्ज दे देते थे। मटर आलू की फसल में दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून भानकर खा लेते या दस पाँच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाश वृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद चिहनों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था। इस वक्त भी दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भून रहे थे जो कि खेत से खोद लाये थे। घीसू की स्त्री का तो बहुत दिन हुए देहान्त हो गया था। माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जब से यह औरत आयी थी, उसने इन खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी और इन दोनों बेगैरतों का दोजख भरती रहती थी। जब से वह आयी, यह दोनों और भी आरामतलब हो गये थे। बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे। कोई कार्य करने को बुलाता, तो निब्र्याज भाव से दुगुनी मजदूरी माँगते। वही औरत आज प्रसव वेदना से मर रही थी और यह दोनों इसी इन्तज़ार में थे कि वह मर जाए, तो आराम से सोयें।

घीसू ने आलू निकालकर छीलते हुए कहा 'जाकर देख तो, क्या दशा है उसकी? चुड़ैल का फिसाद होगा, और क्या? यहाँ तो ओझा भी एक रूपया माँगता है!'

माधव को भय था कि वह कोठरी में गया, तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ कर देगा। बोला 'मुझे वहाँ जाते डर लगता है।'

'डर किस बात का है, मैं तो यहाँ हूँ ही।'

'तो तुम्हीं जाकर देखो न?'

'मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला तक नहीं, और फिर मुझसे लज्ज आएगी कि नहीं? जिसका कभी मुँह नहीं देखा, आज उसका उघड़ा हुआ बदन देखूँ! उसे तन की सुध भी तो न होगी? मुझे देख लेगी तो खुलकर हाथ पाँव भी न पटक सकेगी!'

'मैं सोचता हूँ कोई बाल बच्चा हुआ, तो क्या होगा? सोंठ, गुड़, तेल, कुछ भी तो नहीं है घर में!'

'सब कुछ आ जाएगा। भगवान दे तो! जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रूपये देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर में कभी कुछ न था, मगर भगवान ने किसी न किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया।'

जिस समाज में रात दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों में कहीं ज्यादा विचारवान् था और किसानों के विचारशून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था। हां उसमें यह शक्ति न थी कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसलिए जहाँ उसकी मण्डली के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे,

उस पर सारा गाँव उँगली उठाता था। फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम से कम उसे किसानों सी जीतोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती, और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फयादा तो नहीं उठाते! दोनों आलू को निकाल निकालकर जलते जलते खाने लगे। कल से कुछ नहीं खाया था। इतना सब्र न था कि ठण्डा हो जाने दें। कई बार दोनों की जबानें ज़ल गयीं। छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा जबान, हलक और तालू को जला देता था और उस अंगारे के मुँह में रखने से ज्यादा खैरियत इसी में थी कि वह अन्दर पहुँच जाए। वहाँ उसे ठण्डा करने के लिए काफी सामान थे। इसलिए दोनों जल्द–जल्द निगल जाते। हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकाल आते।

घीसू को उस वक्त ठाकुर की बरात याद आयी, जिसमें बीस साल पहले वह गया था। उस दावत में उसे जो तृप्ति मिली थी, वह उसके जीवन में एक याद रखने लायक बात थी, और आज भी उसकी याद ताजी थी, बोला वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला। लड़की वालों ने सबको भर पेट पूड़ियाँ खिलाई थीं, सबको! छोटे बड़े सबने पूड़ियाँ खायीं और असली घी की! चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई, अब क्या बताऊँ कि उस भोज में क्या स्वाद मिला, कोई रोक टोक नहीं थीं, जो चीज चाहो, माँगों जितना चाहो खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया, कि किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसने वाले हैं कि पत्तल में गर्म–गर्म, गोल–गोल सुवासित कचौड़ियाँ डाल देते हैं। मना करते हैं कि नहीं चाहिए, पत्तल पर हाथ रोके हुए हैं, मगर वह हैं कि दिये जाते हैं। और जब सबने मुँह धो लिया, तो पान इलायची भी मिली। मगर मुझे पान लेने की कहाँ सुध थी? खड़ा हुआ न जाता था। चटपट जाकर अपने कम्बल पर लेट गया। ऐसा दिल दरियाव था वह ठाकुर!

माधव ने इन पदार्थों का मन ही मन मजा लेते हुए कहा 'अब हमें कोई ऐसा भोज नहीं खिलाता।'

'अब कोई क्या खिलाएगा? वह ज़माना दूसरा था। अब तो सबको किफायत सूझती है। शादी ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया कर्म में मत खर्च करो। पूछो, गरीबों का माल बटोर बटोरकर कहाँ रखोगे? बटोरने में तो कमी नहीं है। हाँ, खर्च में किफायत सूझती है!'

'तुमने बीस पूरियाँ खायी होंगी?'

'बीस से ज्यादा खायी थी!'

'मैं पचास खा जाता!'

'पचास से कम मैंने न खायी होंगी। अच्छा पका था। तू तो मेरा आधा भी नहीं है।'आलू खाकर दोनों ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़कर पाँव पेट में डाले सोये रहे। जैसे दो बड़े–बड़े अज़गर गेंडुलिया मारे पड़े हों।और बुध्िाया अभी तक कराह रही थी।

2

सबेरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा, तो उसकी स्त्री ठण्डी हो गयी थी। उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। पथराई हुई आँखें ऊपर टँगी हुई थीं। सारी देह धूल से लथपथ हो रही थी। उसके पेट में बच्चा मर गया था।

माधव भागा हुआ घीसू के पास आया। फिर दोनों जोर–जोर से हाय–हाय करने और छाती पीटने लगे। पड़ोस वालों ने यह रोना धोना सुना, तो दौड़े हुए आये और पुरानी मर्यादा के अनुसार इन अभागों को समझाने लगे।

मगर ज्यादा रोने पीटने का अवसर न था। कफ़न की लकड़ी की फिक्र करनी थी। घर में तो पैसा इस तरह गायब था, जैसे चील के घोंसले में माँस! बाप बेटे रोते हुए गाँव के जमींदार के पास गये। वह इन दोनों की सूरत से नफ़रत करते थे। कई बार इन्हें अपने हाथों से पीट चुके थे। चोरी करने के लिए, वादे पर काम पर न आने के लिए। पूछा क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है? अब तो तू कहीं दिखलाई भी नहीं देता! मालूम होता है, इस गाँव में रहना नहीं चाहता।

घीसू ने जमीन पर सिर रखकर आँखों में भरे हुए कहा 'सरकार! बड़ी विपत्ति में हूँ। माधव की घरवाली रात को गुजर गयी। रातभर तड़पती रही सरकार! हम दोनों उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा दारू जो कुछ हो सका, सब कुछ किया, मुदा वह हमें दगा दे गयी। अब कोई एक रोटी देने वाला भी न रहा मालिक! तबाह हो गये। घर उजड़ गया। आपका गुलाम हूँ, अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगाएगा। हमारे हाथ में तो जो कुछ था, वह सब तो दवा दारू में उठ गया। सरकार ही की दया होगी, तो उसकी मिट्टी उठेगी। आपके सिवा किस द्वार पर जाऊँ।'

ज़मींदार साहब दयालू थे। मगर घीसू पर दया करना काले कम्बल पर रंग चढ़ाना था। जी मे तो आया, कह दें, चल, दूर हो यहाँ से। यों तो बुलाने से भी नहीं आता। आज जब गरज पड़ी तो आकर खुशामद कर रहा है। हरामखोर कहीं का बदमाश! लेकिन यह क्रोध या दण्ड देने का अवसर न था। जी में कुढ़ते हुए दो रूपये निकालकर फेंक दिए। मगर सान्त्वना का एक

शब्द भी मुँह से न निकला। उसकी तरफ ताका तक नहीं। जैसे सिर का बोझ उतारा हो। जब जमींदार साहब ने दो रूपये दिये, तो गाँव के बनिये महाजनों को इनकार का साहस कैसे होता? घीसू जमींदार के नाम का ढिंढोरा भी पीटना जानता था। किसी ने दो आने दिये, किसी को चार आने। एक घण्टे में घीसू के पास पाँच रूपये की अच्छी रकम जमा हो गयी। कहीं से अनाज मिल गया, कहीं से लकड़ी। और दोपहर को घीसू और माधव बाज़ार से कफ़न लाने चले। इधर लोग बाँस–वाँस काटने लगे। गाँव की नर्म दिल स्त्रियाँ आ आकर लाश देखती थीं और उसकी बेकसी पर दो बूँद आँसू गिराकर चली जाती थीं।

3

बाज़ार में पहुँचकर घीसू बोला 'लकड़ी तो उसे जलाने भर को मिल गयी है, क्यों माधव!'

माधव बोला 'हाँ, लकड़ी तो बहुत है, अब कफ़न चाहिए।'

'तो चलों, कोई हलका सा कफ़न लें लें।'

'हाँ, और क्या! लाश उठते उठते रात हो जाएगी। रात को कफ़न कौन देखता हैं?'

'कैसा बुरा रिवाज हैं कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथड़ा भी न मिलें, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।'

'कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है।'

'और क्या रखा रहता है? यही पाँच रूपये पहले मिलते, तो कुछ दवा दारू कर लेते।'

दोनों एक दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर उधर घूमते रहे। कभी इसकी दुकान पर गये, कभी उसकी दुकान पर! तरह तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गयी। तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने जा पहुँचे। और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गये। वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा 'साहूजी, एक बोतल हमें भी देना।'

उसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछली आयी और दोनों बरामदे में बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आय गये!

घीसू बोला 'कफ़न लगाने से क्या मिलता? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानों देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो 'दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बाँभनों को हजारों रूपये क्यों दे देते हैं? कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं!'

'बड़े आदमियों के पास धन है, फूँके। हमारे पास फूँकने को क्या हैं?'

'लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे? लोग पूछेंगे नहीं, कफ़न कहाँ हैं?'

घीसू हँसा 'अबे, कह देंगे कि रूपये कमर से खिसक गये। बहुत ढूँढा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास न आएगा, लेकिन फिर वही रूपये देंगे।'

माधव भी हँसा इस अनपेक्षित सौभाग्य पर। बोला 'बड़ी अच्छी थी बेचारी! मरी तो खूब खिला पिलाकर!'

आधी बोतल से ज्यादा उड़ गयी। घीसू ने दो सेर पूड़ियाँ मँगाई। चटनी, अचार, कलेजियाँ। शराबखाने के सामने ही दुकान थी। माधव लपककर दो पत्तलों में सारे सामान ले आया। पूरा डेढ़ रूपया खर्च हो गया। सिर्फ थोड़े से पैसे बचे रहे। दोनों इस वक्त इस शान में बैठे पूड़ियाँ खा रहे थे जैसे जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ था, न बदनामी की फ़िक्र। इन सब भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।

घीसू दार्शनिक भाव से बोला 'हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है तो क्या उसे पुन्न न होगा?'

माधव ने श्रद्धा से सिर झुकाकर तसदीक़ की 'जरूर से जरूर होगा। भगवान् तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला वह कभी उम्र भर न मिला था।'

एक क्षण के बाद माधव के मन में एक शंका जागी। बोला 'क्यों दादा, हम लोग भी एक न एक दिन वहाँ जाएँगे ही?'

घीसू ने इस भोले भाले सवाल का कुछ उत्तर न दिया। वह परलोक की बातें सोचकर इस आनन्द में बाधा न डालना चाहता था।

'जो वहाँ हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफ़न क्यों नहीं दिया तो क्या कहोगे?'

'कहेंगे तुम्हारा सिर!'

'पूछेगी तो जरूर!'

'तू कैसे जानता है कि उसे कफ़न न मिलेगा? तू मुझे ऐसा गधा समझता है? साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ? उसको कफन मिलेगा और बहुत अच्छा मिलेगा।'

माधव को विश्वास न आया। बोला 'कौन देगा? रूपये तो तुमने चट कर दिये। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी माँग में तो सेंदुर मैंने डाला था। कौन देगा, बताते क्यों नहीं?'

'वही लोग देंगे, जिन्होंने अबकी दिया। हाँ, अबकी रूपये हमारे हाथ न आएँगे।' ज्यों–ज्यों अँधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले लिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह में कुल्हड़ लगाये देता था। वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर एक चूल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थी और कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते है। या मरते हैं। या न जीते हैं न मरते हैं। और यह दोनों बाप बेटे अब भी मजे ले लेकर चुसकियाँ ले रहे थे। सबकी निगाहें इनकी ओर जमी हुई थीं। दोनों कितने भाग्य के बली हैं! पूरी बोतल बीच में है। भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पूड़ियाँ का पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दिया, जो खड़ा इनकी ओर भूखी आँखों से देख रहा था। और देने के गौरव आनन्द और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया। घीसू ने कहा 'ले जा खूब और आशीर्वाद दे! जिसकी कमाई हैं, वह तो मर गयी। मगर तेरा आशीर्वाद उसे जरूर पहुँचेगा। रोयें रोयें आशीर्वाद दो बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे है!'

'माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा वह बैकुण्ठ में जाएगी दादा, बैकुण्ठ की रानी बनेगी।

घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला 'हाँ, बेटा बैकुण्ठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते–मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गयी। वह न बैकुण्ठ जाएगी तो क्या ये मोटे मोटे लोग जाएँगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं !और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं?'

श्रद्धालुता का यह रंग तुरन्त ही बदल गया। अस्थिरता नशे की खासियत है। दुःख और निराशा का दौरा हुआ।

माधव बोला 'मगर दादा, बेचारी ने जिन्दगी में बड़ा दुःख भोगा। कितना दुःख झेलकर मरी! वह आँखों पर हाथ रखकर रोने लगा। चीखें मार मारकर।'

घीसू ने समझाया 'क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया जाल से मुक्त हो गयी, जंजाल से छूट गयी। बड़ी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्द माया मोह के बन्धन तोड़ दिये।' और दोनों खड़े होकर गाने लगे।

'ठगिनी क्यों नैना झमकावे! ठगिनी।'

पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थीं और यह दोनों अपने दिल में मस्त गाये जाते थे। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बताये, अभिनय भी किये। और आखिर नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।

मोबाइल पुराण

(1)

मोबाइल यूं चढ़ा ज्यों मसान का भूत,
पेंशन लेते बाप हों या नकारा पूत।
नकारा हो पूत, बॉस बाबू चपरासी,
नेता बनिया कुली कबाड़ी चौकीदार खलासी।
हर तबके के नर–नारी की यही एक स्टाइल,
बाबा मांगें भीख मगर रखाते मोबाइल।

(2)

बिन नथनी के नाक ज्यों बिन बिंदिया के माथ,
ऐसे ही सूनो लगे मोबाइल बिन हाथ।
मोबाइल बिन हाथ, बनी क्या चीज निराली,
नहीं अछूती कोई सास साली घरवाली।
साड़ी रंग से मेच करे यूं कम्मर में लटकायें,
सरेआम वे प्रियजनों से हंस–हंस के बतियायें।

(3)

इस रचना को देखकर ब्रह्मा जी हैं दंग,
मोबाइल ऐसो भयो ज्यों शरीर को अंग।
ज्यों शरीर को अंग, रहें बाहर या घर में,
रहे हमेशा संग, करें पूजा मंदिर में।
आरती गा रय घंटी आ गई, कितना पेमेंट करें,
तीन लाख का चेक काट दो, ओम जय जगदीश हरे।

(4)

बनी जरूरी चीज पर होता दुरूपयोग,
नई पीढ़ी ने शौक में गले लगाया रोग।
गले लगाया रोग, बढ़ी ऐसी बीमारी,
जब देखो तब लगा कान से भूले दुनिया सारी।
काम ना सूझे ऐसे जिनसे बढ़े मान सम्मान,
मोबाइल रख लिये बतावें कोरी झूठी शान।

(5)

मोबाइल रखने की देखो ऐसी मच रई होड़,
दिया लड़कियों ने लड़कों को पीछे छोड़।
लड़कों को पीछे छोड़, अदा उनकी मन मोहे
तन पे धारें जींस हाथ मोबाइल सोहे।
रस्ता चलते बात करत हैं ऐसी सुध–बुध खोय,
सड़क खतम हो गई परंतु बात खतम न होय।

(6)

प्रलय कौन सी आ रही बतलाओ हे तात,
दो पहिया भी चल रही और कर रहे बात।
और कर रहे बात दृश्य यह आम हो रहा,
जरा भी धीरज नाहिं बड़ा अचरज हो रहा।
चेतो भैया इस सरकस से नहीं बढ़ेगा नाम,
अपने हाथों दुर्घटना को क्यों देते अंजाम।

कफ़न के बहाने

मुंशी प्रेमचंद की बहुचर्चित और कालजयी कहानी 'कफ़न' घीसू और माधव नामक पात्रों की कहानी है। इस कहानी को पढ़ना और विचारना, इन दोनों स्थितियों में मन की स्थिति विचारणीय है। जब हम कहानी 'कफ़न' को पढ़ते जाते हैं तब मन दया, घृणा से भर जाता है घीसू माधव के प्रति क्रोध बढ़ता ही जाता है। इधर बीवी मरने को है और वे दोनों अपने खाने के लिए और सोने के लिए व्यवस्था में लगे हैं। उनके जितना घोर स्वार्थी और घृणित व्यक्तित्व हो ही नहीं सकता। मरी बीवी को कफ़न ओढ़ाने के लिए समाज के सामने रो–रोकर अपनी विपन्नता और लाचारी का दोहन करते हुए नजर आते हैं और उससे उपजी दया से प्राप्त पैसों से खाना और पीना करते हैं, इस स्थिति तक पहुंचते हुए वे पूर्ण रूप से घृणा के पात्र हो जाते हैं। वाकई में समाज के वाशिंदों का यह पहलू घोर चिंताजनक और आपत्तिजनक है, समाज कुछ नियमों के तहत ही सही ढंग से चलता है। जिसमें कर्तव्य और अधिकार दोनों ही आते हैं, जीवन के अपने कर्तव्यों का पालन कर आदर्श जन ही बनना होता है।

लगातार गरीबी में रहना और गरीब बने रहना, दो अलग बातें जरूर हैं परन्तु भोगना एक ही प्रकार से पड़ता है, आध ा पेट खाना, कभी–कभी भूखे रहना, अपनी आवश्यताओं को सीमित बनाये रखना, ये सभी तो समान रूप से दोनों प्रकार के गरीबों पर लागू होते हैं। हमने अपने जीवन में दो प्रकार की परिघटनाओं को देखा है और समझा भी है. लगातार बूंद बूंद पानी पड़ने पर भी घड़ा भर जाता है और थोड़ा–थोड़ा कर्ज भी करजा बनकर सर पर सवार हो जाता है। इन दो चीजों को लोग भूख से जोड़कर क्यों नहीं देखते हैं? भूख का व्यवहार भी तो ठीक इसी प्रकार है। वह भी तो धीरे–धीरे बढ़कर आग बन जाती है। भरे पेट दिमाग से चलने वाला शरीर, पेट खाली होते ही पेट की आग सा हरहराने लगाता है। उस आग में पंचेन्द्रियां मात्र एक ही काम की ओर दौड़ लपक उठती हैं। खाना न खाना और थोड़ा–थोड़ा खाना ये दोनों परिस्थितियां बड़ी अंतरविरोधी है। खाना न खाने पर भूख ठहर जाती है; और थोड़ा–थोड़ा मिलने पर खाने से भूख भड़कती जाती है। भूख का यह गणित नहीं, यह तो भूख का भौतिक और रासायनिक परिवर्तन है। शरीर के इस परिवर्तन को जानबूझकर अनदेखा करना और तिरस्कृत करना, उच्च आदर्श की उम्मीद रखना, यह संभव है क्या ? सांसारिक विषमताओं में आदर्श तभी स्थापित होते हैं जब पेट भरा है। उसके पहले सारे आदर्श ढकोसलों की श्रेणी में आते हैं।

घीसू माधव की बातचीत में आया प्रसंग कि *'मरने के बाद कफन को तो जल ही जाना है।'* और *'समाज के लोग कफन भी और पिछला हिसाब नही पूछेंगे'*, ये दो वक्तव्य गहरी बातें हैं जो समाज का विद्रूप चेहरा ही दिखाती है। वह विद्रूपता जो भद्रता का आवरण ओढ़कर सभ्यता बनी हुई है। सामाजिक कुरीतियां इस कदर फैली हैं कि व्यक्ति के मरने के बाद लोग चाहे तो लाखों भी खर्च करे तो कम हो जाये। व्यक्ति का मरना यदि बिस्तर पर हो गया हो तो बिस्तर, चादर, तकिया फेंक देना तो कुछ हद तक तर्कसंगत लगता है परन्तु ऐसा न हो तब भी उसके बिस्तर, चादर, तकिया, जूते, चप्पल, बर्तन, कपड़े, घड़ी, चश्मा सबकुछ फेंक दिया जाता है। कफ़न के नाम पर मस्तक पर लोग, रिश्तेदार कपड़े डालते हैं। नई शाल, रेशम का कपड़ा, नये वस्त्र पहनकर लाश को जला दिया जाता है। कई स्थानों पर कांसे की थाली, लोटा हल्का सा तोड़कर फेंका जाता है। देश के अलग–अलग स्थानों पर इस प्रकार की अनेक कुप्रथायें चल रही हैं, कफन तो प्रतीक है जिसे तो मरने के बाद जल ही जाना है।

व्यक्ति के मरने के पहले वह इस गति में रह रहा है उस पर दिल का पसीजना बहुत कम लोगों में पाया जाता है। वह खाना खाता है, नहीं खाता है, चिथड़े लपेटे रहता है, ठण्ड में ठिठुरता है आदि बातें देखते समझते रहने के बाद भी लोग अनजान बने रहते हैं, समाज अनजान रहता है, रिश्तेदार अनजान बने रहते हैं। जीते जी जिन चीजों से व्यक्ति अपना कुछ वक्त अच्छा गुजार सकता है उन्हें, उसके मरने के बाद फेंक फांककर जलाकर नष्टकर दिया जाता है। कितना विरोधाभास है सभ्य बन जाने में! गरीब के पास एक जोड़ी कपड़े का होना और भी बड़ी बात है तो फिर कफन/दफ़न में कपड़ों को किस मुश्किल से जलाया जाता होगा।

घीसू माधव का मरनी के बाद मिले पैसों से बरसों से इकठ्ठी हुई भूख मिटाना क्या गलत हो सकता है? या फिर उस भूख को वैसे ही बनी रहने देना और किसी के काम आ सकने वाली चीज को नष्ट कर देना सही हो सकता है? लोगों का यह कहकर समाज में सभ्य बने रहना कि बेचारा जीते जी तो दुख पाया ही जरा भी सुख न मिला, और मरने के बाद भी कफ़न नसीब न हुआ, क्या उचित है? जो समाज किसी के मरने पर बढ़–चढ़कर कफ़न–दफ़न करता है वह पहले इतना निष्ठुर क्यों बना रहता है। मरने के बाद की संवेदनहीनता का क्या निहितार्थ हो सकता है। मरनी के बाद आये लोगों का उंगलियां चाट

चाटकर खाना या फिर वहां की बेकार व्यवस्था पर भड़ास निकालना सभ्यता कैसे हो सकती है ? यह कैसा दोहरा चरित्र है समाज का! हम लिखने पढ़ने वाले बौद्धिक जुगाली के कर्ता धर्ता कभी गरीब बनकर क्यों नहीं सोचते हैं ? गरीबी की कल्पना से भी भयभीत हो जाने वाला व्यक्ति कभी भी गरीबी का वास्तविक वर्णन नहीं कर सकता है। मजबूर भूख को एकत्र कर पेट की जलती भट्टी पर आदर्श कैसे टिकते हैं, ये सोचना महत्वपूर्ण है। महत्वपूर्ण तो है भरे पेट का आदर्श जो गरीबी से ऊपर पाया जाता है। उन विभिन्न आदर्शों पर कौन दृष्टि मारे? गरीबों के सर, कंधे, पीठ और दोनों हाथों से आदर्शो से ठसाठस भरी बोरियां थमाना और उसके बाद उनसे दौड़ में प्रथम आने की उम्मीद–घोर निराशाजनक व्यवहार है यह।

शराब के कारण आने वाली गरीबी और गरीबी में शराब पीना, जरा इस पर विचार किया जाय। घीसू माधव आलसी नंबर एक है। यहां पर पुनः भूख के रासायनिक और भौतिक परिवर्तनों पर नजर डालें। पहले घीसू माधव के मन में घुसकर उनके दृष्टिकोण से। लगातार गरीबी झेलते रहना और अपने आप की नियति वही मान लेना, भूख के ज्वालामुखी बनने की तरह, क्या ऐसा संभव है ? नहीं बिल्कुल भी नहीं, जैसे भूख का ज्वालामुखी मौका मिलते ही जला देता है वैसे ही इस गरीबी, लाचारी, मजदूरी आदि को लगातार झेलते रहना भी मौका ताड़ कर बांध तोड़ ही देता है। इस बांध को मजबूती मिलती है नशे से, नशा इस वास्तविक सच्चाई को आभासी में बदल देता है। वे स्वयं को मुक्त मान लेते हैं इन कठिनाइयों से।

भूख के रासायनिक एवं भौतिक परिवर्तनों पर अब हम अपनी सोच से विचार करें तो पाते हैं कि उन्हें तो धूप, ठण्ड, बरसा झेलते हुए आदत हो गई है। इन प्राकृतिक प्रहारों के वे आदी हो गये हैं। फिर क्यों वे शराब पीते है ? शराब पीने का बहाना ढूंढते हैं। नशे के लिए ही तो कमाते हैं। नशा छोड़ दें तो उनके हालत सुधर जाये। गरीब बने रहने में उनका फायदा है तो वे क्यों मेहनत करें ?

कौन सा मजदूर होगा जो मजदूरी करके इतना कमा लिया हो जो एक व्यापारी को टक्कर दे, या नौकरी करने वाले को टक्कर देता हो ? मजूदरी में हर तरह की मजदूरी शामिल है चाहे वह बोझा ढोना, खुदाई करना, राजमिस्त्री, बढ़ई, बिजली मिस्त्री, ड्राइवर, रिक्शा चालक आदि कुछ भी हो। ये सारे एकदम गरीब नहीं हैं यह बात एकदम सही है पर क्या ये 'बेईमान' बने बिना जीवन जी सकते है? क्या ऐसा संभव है? उदाहरण देना जरूरी है तब ही समझ पायेंगे। बढ़ई का उदाहरण लें। वो अच्छा खासा कमा रहा था, उसके बेटे की तबीयत अचानक खराब हुई, उसने पड़ोसी से पांच हजार उधार लिए। जल्दी ही बेटा ठीक हो गया। थोड़े पैसे चुकाया कि काम कम हो गया, अब वह पहले पेट भरे या पैसा चुकाये ? बेचारा बेईमान हो गया! एक दिन आंधी तूफान सा आया, पास का पेड़ गिर गया। उसने सोचा चलो कुछ लकड़ी उठा लाऊं पाटा बेलन कुछ बनाकर बेच दूंगा, कुछ कमाई हो जाये तो पैसा भी चुका दूंगा। लकड़ी उठाकर उसने तैयार कर लिये पाटा बेलन, तब निगम और वन विभाग वाले जागे और उसके यहां बनाये हुए पाटे और बेलन उठा ले गये। थोड़ा बहुत खर्चा भी करना पड़ा। अब उस ''चोर'' का क्या किया जाये क्योंकि वो 'बेईमान' तो चोर भी हो चुका है।

एक मजदूर अपनी रोजी से पेट पाल सकता है कपड़े और मकान कौन देगा ? यदि वह थोड़ी मोड़ी उधारी लेकर, कपड़ा और मकान का जुगाड़ करता है तो वह पैसे कैसे चुकाये ? वह पैसे लेते वक्त सोचता है कि ज्यादा मेहनत करके चुका दूंगा पर कुछ न कुछ खर्चे आ ही जाते हैं जैसे कि दुख बीमारी, दुर्घटना। वह फंदे में उलझता जाता है। वह बेईमान बनता जाता है। इस स्थिति को जानते बूझते हुए भी समाज का संपन्न वर्ग उन्हें बेईमान और डकैत साबित कर ही देता है। गरीब को गरीब बने रहने पर होने वाला फायदा वही लोग देखते हैं जो सामंती व्यवस्था में विश्वास रखते हैं। अपने अधीन सेवकों की फौज हो और वे सदा गरीब हों जिससे दबे होंगे। वो चाहे जैसा उनसे काम करवा सके।

नशे के कारण गरीबी और गरीबी के कारण नशा ये दो बिन्दु नजर आते हैं परन्तु ये एक ही बिन्दु हैं जो एक दूसरे में समाहित है या एक के ऊपर दूसरा धरा है। घीसू और माधव घर के भीतर तड़पती प्रसूता को तड़पने देने का पाप जरूर करते हैं पर उनके हाथ में क्या था जो वे कुछ पाते है ? वैद्य/दाई उनके घर आने से रहे, उन्हें तो पैसे चाहिए और जिस बात से वे अपराधी सिद्ध किये गये कफ़न के पैसे उड़ाकर तो उनका पहले पेट भर खाना सही था और शराब पीना इसलिए जरूरी था कि दुनिया की गाली जो सुननी थी। ऐसा इसलिए है कि अतिरेक पूर्ण परिस्थितियां गढ़ी गईं हैं। भूख अपनी जगह अटल है उसे दुनिया की कोई भी परिस्थिति हिला भी नहीं सकती है।

लुटेरे

रवि यादव
सी–1/86 अस्मिता
ज्योति को आपरेटीव
सोसायटी, मार्वे रोड
मलाड (वेस्ट) मुंबई
मो.–09821058438

पुणे से लौटते हुए जब अचानक कार ने धोखा दे दिया तो साहिल एकदम से घबरा गया। एक तो गर्मी ने हालत खराब कर रखी थी, ऊपर से रात के ग्यारह बजे इसी एरिया में कार खराब होनी थी। जहां सब से ज्यादा लूटपाट होती है। आसपास सारी दुकाने बंद हो चुकी थीं। साहिल ने एक बार फिर सेल्फ मारकर कोशिश की कि शायद कार कुछ दया करे उस पर, मगर कार आज रूठी प्रेमिका सी अड़ कर बैठ गयी थी। साहिल ने देखा एक कार गेराज को बंद करके कुछ लड़के निकलने को तैयार थे। साहिल के आग्रह पर वो तुरंत तैयार भी हो गये। पंद्रह मिनिट के अंदर कार के अंजर पंजर खोल डाले गये और बीमारी का पता लगाकर उसे तंदरूस्त कर दिया गया। कोई बड़ी खराबी नहीं थी बस पंखे की बेल्ट टूट गयी थी जिसकी वजह से गाड़ी हीट लेकर बंद पड़ गयी थी। तीन सौ पचास रूपये हुए। साहिल ने पांच सौ का नोट दिया जिसका खुला कराने के लिए एक लड़का गया तो बहुत देर तक न लौटा। साहिल को शक हुआ कि कहीं वो गलत लोगों में तो नहीं फंस गया। अंधेरा पूरे शबाब पर था। अगर ये लड़के उसे कोने में लेजाकर मार डालें या सब कुछ छीन लें तो कोई भी यहां उसकी मदद करने नहीं आयेगा। प्यास के मारे गला सूखा जा रहा था। उसे लगा पैसे खुला कराने के नाम पर ये लड़के जानबूझकर देरी कर रहे थ, अपना कोई प्लान बना रहे थे। तभी वो लड़का पांच सौ का खुलाकर ले आया। उसके हाथ में एक कोल्ड ड्रिंक की बोतल भी थी।

''साहब खुला मिल नहीं रहा था सो ये बोतल खरीद कर खुला कराना पड़ा। बोतल के पैसे आप हमारे तीन सौ पचास में से काट लेना।'' साहिल ने जल्दी से डेढ़ सौ रूपये जेब में डाले तो लड़का बोला।

''साहब बहुत गर्मी है, ये लीजिए थोड़ी कोल्ड ड्रिंक पी लीजिए, फिर जाना। और रास्ते में कहीं रूकना मत ये एरिया खतरनाक है।'' अब साहिल समझ गया कि असली प्लानिंग क्या है, इतनी देर उसे लगी है ये नशीली कोल्ड ड्रिंक लाने में। हालांकि उसका गला सुख रहा था मगर मुस्कुराते हुए कहा। ''नो थैंक्स'' दूसरा लड़का बोला।

''पी लीजिए न साहब हमें अच्छा लगेगा।''

''नहीं–नहीं दरअसल मेरा गला खराब है उसका इलाज चल रहा है इसलिए डॉक्टर ने कुछ भी ठण्डा पीने को मना कर रखा है।'' लड़का थोड़ा उदास हुआ फिर बोला।

''कोई बात नहीं साहब! आप जाइये भाभीजी इंतजार कर रही होंगी।''अपनी पत्नी के लिए इस लड़के का यूं भाभीजी शब्द इस्तेमाल करना साहिल को बुरा लगा मगर वो मुस्कुराकर बोला। ''थैंक्स फॉर हेल्प।'' साहिल ने कार स्टार्ट की तो देखा वो लड़के सड़क पर मस्ती मारते हुए आगे बढ़ रहे थे और बोतल बंद की बंद उनके हाथ में थी उसका शक और पक्का हो गया तभी उसने देखा कि एक लड़के ने ढक्कन खोलकर बोतल से दो घूंट पिये फिर बारी–बारी सब ने पिए। ये तीन सौ पचास रूपये, जिनका हिसाब शायद उन्हें अपने मालिक को नहीं देना था आज रात उनकी पार्टी का कारण बन गए थे। उसे अपने आप पर शर्मिंदगी सी हो उठी कि उसने उन लोगों पर शक किया था जिन्होंने उसकी मदद की थी। उसका दिल किया कि उन्हें आवाज लगाकर उनकी जूठी बोतल से वह भी दो घूंट पी ले उसकी प्यास बुझ जायेगी और उन लड़कों को अच्छा लगेगा मगर तब तक वो लड़के हंसी मजाक करते दूर निकल चुके थे.....।

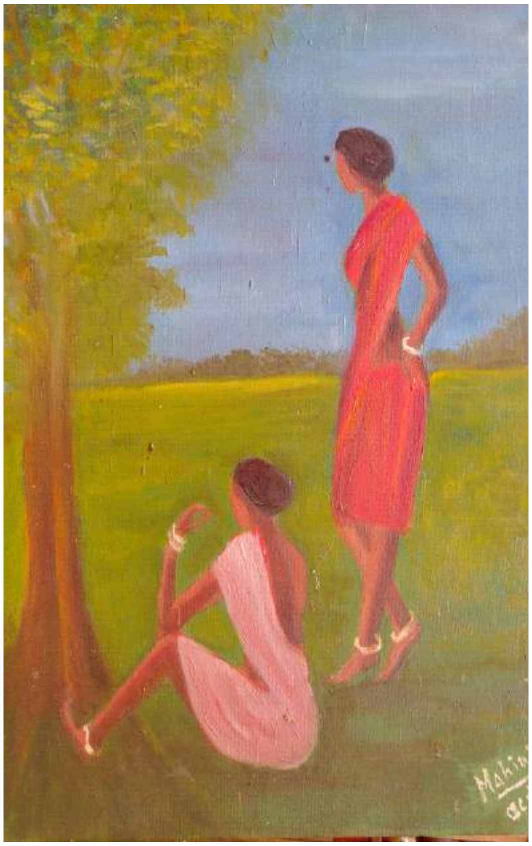

तटस्थों का शहर

सब तटस्थ हैं
यह तटस्थों का शहर है।

न कोई शत्रु यहां, न कोई मित्र
न कोई पक्ष, न विपक्ष
भयावह संत्रास चेहरे पर
कोई कुछ बोलता नहीं
तटस्थता ओढ़े हुए हैं सब।

सत्य कहने का सामर्थ्य नहीं
और झूठ को झूठ भी कह नहीं सकते
कोई सफेद को सफेद नहीं कहता
न काले को कोई काला कहता
अवसर मिला तो रंगीन बनेगा
मुंह में कुछ और, मन में कुछ और
संबंध में नहीं अपनापन
मन नहीं हंसता, मात्र होंठ हंसते हैं।

बिना रूप का चेहरा
बिना दृश्य की आंख
बिना रंग की तस्वीर
बिना रास्ता के बटोही
यह शहर........तटस्थों का शहर।

न स्वागत के दरवाजे खुलते हैं न झरोखे
न जलती हैं तिरस्कार की आंखें
न मुरस्कराकर कोई पास आता है
न सम्मान होता है न अपमान
क्या हुआ इस शहर को?
चहल पहल ऐसी कि मुर्दे जाग उठे हैं
न कोई अपना, न कोई बेगाना
यह शहर.......तटस्थों का शहर।

लगता है छोड़कर चला जाउं
या धुंध में समा जाउं
यह शहर, ये लोग, यहां की गलियां
ये सड़क, ये सन्नाटा
यहां के उजड़े–उजड़े से मुखौटे
यहां मुझे न अमृत पीने को मिला न विष
न जीवन मिला न मृत्यु
न रंग मिला, न रोगन
यह शहर.......तटस्थों का शहर।

देव भंडारी
एच.एल.डी रोड
कलिम्पोंग
जिला–दार्जिलिंग
मो.–08101181053

डॉ.अशफ़ाक की लघुकथाएं

भगवान की लीला

गांव के उस फकीर का विवाह हो गया है जो दोनो आंखों से अंधा था, लेकिन दुःख की बात यह थी कि जिस लड़की से विवाह हुआ था, उसकी आंखें भी भगवान ने बचपन में ही छीन ली थी। वे दोनों एक दूसरे का सहारा होते हुए भी बेसहारा थे लेकिन पांच–छह वर्ष बाद जब मैं अपने गांव लौटा तो देखा वे दोनों अपने बेटे के सहारे चल रहे थे, जिसकी आंखें बड़ी सुंदर थी।

डॉ. अशफाक अहमद
41/ए, टीचर्स कालोनी,
जाफर नगर, नागपुर
मो.–09422810574

बदलता समय

जब भी वह छोटा बच्चा रूखी रोटी खाकर उछलकूद करता तो मां कहती 'बेटा ज्यादा उछलकूद न कर वरना तुझे भूख लग जाएगी। फिर मैं रोटी कहां से लाऊंगी।' लेकिन आज बच्चे का चेहरा खुशी से खिला हुआ था। वह पेट भर खाना खाकर धूम धड़क्का और शरारतें कर रहा था। मां भी उसे डांटने की बजाये उसकी शरारतों पर हंस रही थी। बच्चा अपनी मां को खुश देखकर कहने लगा।

'मां, तू सच कहती थी कि सभी दिन एक जैसे नहीं रहते। मां जब से भूकम्प आया है, हमारी मुसीबत के दिन फिर गये हैं। अब तो हर टेन्ट में खाना मिलता है और मैं दिन भर खाता रहता हूं।'

एक जख्म और सही

'तुम यहां क्यों आती हो?'
'तुम से मिलने....'
'परन्तु रोजाना आने का कारण?'
'मैं नहीं जानती लेकिन यह सच है कि आपसे मिलने के बाद मेरे मन को शांति मिलती है और मैं सुकून महसूस करती हूं।'
'सुनो यह पागलों की तरह बातें न करो। मैंने प्रेम से तौबा कर ली है। यूं भी मेरे दिल में कई दर्द पल रहे हैं मेरा दिल जख्मों से चूर है।'
'मैं जानती हूं इसलिए उन जख्मों को भरने के लिए कह रही हूं। एक जख्म और सही!'

ग़ज़ल

—1—

हैरां हूं सियासी घोड़ों को बेलगाम देखकर
नंगे हो गये सबके सब, हमाम देखकर।
अकाल के मौसम में, जश्न मना रहे ऐसे
के चश्मे चटक उठे हैं, इंतजाम देखकर।
संगदिल मुझे कह लो या कह लो बेशरम
जिन्दा हूं रोज़–रोज़ कत्लेआम देखकर।
शहर बहुत प्यासा है उन्हें फिक्र है बड़ी
आया यकीं, दावत में बहता जाम देखकर।
नरगिसी सुबहों से परेशान थे कुछ लोग
आया करार, खून भरी शाम देखकर।
तिजोरियों में छुप गया, किसी सुरसा सा बजट
सरकार फिर भी खुश है, सारा काम देखकर।
फीता काटने के वास्ते हुजूर आयेंगे
देहात चुप है, शहरी तामझाम देखकर।
हर साल बदलते हैं, कायदे लूटमार है
राहत की सांस ले रहे, निजाम देखकर।
ये ठाठ ये सवारी, ये फौज, ये बंदूक
राहों में बिछ गये हैं, हम गुलाम देखकर।

बरखा भाटिया
सरगीपालपारा,
कोण्डागांव छ.ग.
मो.–09752392921

—2—

रचा रही है राजनीति, तरह–तरह के रास
रावण बैठे गद्दी पर, राम गये वनवास।
भोग और ऐश्वर्य का अधिकारी है झूठ
सच्चाई के हिस्से में, कैद, घुटन और त्रास।
निर्णय के दरबार में, गूंजी ये चित्कार
अन्यायी की चौखट का, न्याय बना है दास।
अपंग बेचारी सभ्यता, चली पतन की ओर
झेल रहे हैं जीवन मूल्य, अभी स्वयं का हरास।
मंदिर का कलश बना, आडम्बर का पात्र
मस्जिद की मीनार में, कट्टरता का नास।
लहु के दरिया में फंसी, कश्ती कौमों की
मानवता की सीख, सबक बस कोरी बकवास।
वो कहते हम देख रहे, बच्चों के भविष्य
जिन्हें ना दिखते, खाली पेट के गढ्ढे, नजर उदास।
उसके मालिक ने न समझी, सिसकी आंतों की
पीता है वो पानी दिनभर, रात रखे उपवास।
अपनों पर शक करना, अब समझदारी की बात
और गुनाह सबसे बड़ा, गैरों पर विश्वास।

—3—

अबूझों का आदिवासियों का प्यारा बस्तर
छत्तीसगढ़ की आंखों का तारा बस्तर।
सदियों से भूखा–प्यासा है, अनाज उगा के
कंदमूल से करता है गुजारा बस्तर।
कोसा है रेशम है पर नंगा है गरीब
लंगोटी पहनता रहा, हमारा बस्तर।
दिन–रात गुजरते हैं महुआ बटोरते
बोतल में डूब जाये, थका–हारा बस्तर।
पथरीले रास्ते पर खाता रहा ठोकर
सहारा ढूंढता है, बेसहारा बस्तर।
ना खिलाड़ी नजर आये, ना बिसात है दिखती
जाने जीत मिली किसको, किसने हारा बस्तर।
ना हुसैन की तस्वीर, ना निराला की कविता
शोषण का गरीबी का है नजारा बस्तर।
कब चाही थी बस्तर ने बारूद गोलियां
लहुलुहान हालात का है मारा बस्तर।
क्या बेबसी है अपनी ज़मीं छोड़ चले हम
गुमराह बांकुरों ने यूं, बिसारा बस्तर।
अश्कों खूं से भरा दामन निचोड़ रहे हैं
जिन हाथों ने जमीं पे था, उतारा बस्तर।
जख्मों पे लगाए गए मरहम करोड़ों के
सिसक रहा है फिर भी क्यों, बेचारा बस्तर।
ये सवाल पूछती है खामोश निगाहें
क्या कभी न मुस्कुरायेगा, हमारा बस्तर।

कन्यापूजन

नवरात्र के दिन चल रहे थे। शहर में कई स्थानों पर मां दुर्गा की प्रतिमाएं स्थापित की गईं थीं। दिन में तो हवन–पूजन होता ही था, शाम को बिजली की चकाचौंध में मॉ की आरती का नज़ारा देखने–सुनने लायक होता था। आरती और प्रसाद लेने सारा शहर उमड़ पड़ता था।

अष्टमी के दिन सुबह से ही घरों में चहल–पहल थी। पूजा–पाठ के साथ कन्याओं को भोजन करवा कर अधिक से अधिक पुण्य कमाने की होड़ लगी हुई थी। जिसके घर में कुमारी कन्याएं थीं, उनके यहां तो सुबह आठ बजे से बुलाने वालों का तांता लगा था। लड़कियों के लिए भी वह दिन बड़ी खुशहाली और सम्मान का था। भोजन भी करती थीं और कुछ न कुछ दक्षिणा भी पाती थीं। मुझे यह सब देखकर प्रसन्नता थी कि समाज में जहां उनके प्रति दोयम दर्जे की भावना है वहीं उनकी पूजा भी की जाती है। मेरी भी दोनों लड़कियां कई घरों में कन्यापूजन के लिए बुलाई गईं थीं।

अगली सुबह अख़बार उठाकर पढ़ने के लिए ऑखों पर चश्मा चढ़ाया ही था कि एक हेडिंग पर निगाह अटक गई, लिखा था–'कन्यापूजन के बहाने घर में बुलाकर नाबालिग के साथ दुष्कर्म।'

अरविन्द अवस्थी
श्रीधर पाण्डेय सदन
बेलखरियाकापुरा
मिरजापुर उ.प्र.–231001
मो.–08858515445

रचनाकार कृपया ध्यान देवें– आपकी रचना में हमारी संपादकीय टीम के द्वारा आवश्यक सुधार एवं शीर्षक परिवर्तन संभव है। समयाभाव के कारण इसके लिए अलग से पत्राचार संभव नहीं है अतः इसे अपनी स्वीकृति मानते हुए प्रकाशन हेतु रचनायें प्रेषित करें। कमजोर रचनाओं की प्राप्ति और उन्हें प्रकाशित न कर अस्वीकृत करने की अपेक्षा उनमें आवश्यक सुधार कर प्रकाशित करना हमारी दृष्टि में उचित होगा।

फार्म–4

प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा 19 डी के अंतर्गत अपेक्षित 'बस्तर पाति' नामक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरणः–

1. प्रकाशन का स्थान–	: सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
2. प्रकाशन की आवर्तता–	: त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम–	: सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	: हां
4. पता–	: सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
5. प्रकाशक का नाम–	: सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	: हां
5. सम्पादक का नाम–	: सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	: हां
पता–	: सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
6. उन व्यक्तियों के नाम और पते, जो पत्रिका के मालिक और कुल प्रदत्त पूंजी के एक–एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार या भागीदार हैं–	: सनत कुमार जैन : सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.

मैं सनत कुमार जैन, एतद् द्वारा घोषणा करता हूं कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार उपयुक्त विवरण सही हैं। **सनत कुमार जैन**

प्रकाशक / मुद्रक / सम्पादक / स्वामी

बैक कवर के फोटोग्राफर

श्री शैलेष यादव

शैलेष यादव इस क्षेत्र के संभावनाशील फोटोग्राफी के पर्याय हैं। इस क्षेत्र की संकोची प्रवृत्ति को थामे हुए यादव जी अपनी प्रतिभा और योग्यता को आम लोगों के बीच रेखांकित नहीं करते हैं।

उनके पास बस्तर की संस्कृति को समेटे हुए छायाचित्रों का जखीरा है।

बारीक से बारीक घटनायें इनकी नजरों से बगैर दिखे नहीं निकल सकती हैं।

प्रस्तुत चित्र एक ही नजर में बस्तर के बारे में बहुत कुछ बता देता है, संस्कृति, पहनावा और सबसे महत्वपूर्ण बात यहां का सीधापन! दशहरा मेला घूमने आई लड़की का चेहरा हम सभी को अपनी पहचान बता रहा है।

इनके चित्रों की बानगी आगामी अंको में लगातार हम सभी को रोमांचित करेगी, ऐसा हमारा प्रयास होगा।

आप उनसे मोबाइल पर संपर्क कर सकते हैं–09425596738

पता है–ठाकुर रोड, जगदलपुर छ.ग.

नक्कारखाने की तूती

यह शीर्षक हमारे उन विचारों के लिए है जो लगातार हमारा दम घोंटते हैं परन्तु हम उन्हें आपस में ही कह सुन कर चुपचाप बैठ जाते हैं. चुप बैठने का कारण होता हैं हमारी 'अकेला' होने की सोच! इस सोच को तड़का लगता है इस बात से कि 'सिस्टम ही ऐसा है क्या किया जा सकता है. और ऐसा सोचना पागलपन है.' हर पान की दुकान, चाय की दुकान और ट्रेन के सफर में लगातार होने वाली ये हर किसी की समस्या होती है, ये चिन्ता हर किसी की होती है. और सबसे बड़ी बात कि समस्या का हल भी वहीं होता है. ऐसी समस्या और उसका हल जो दिमाग को मथ कर रख देता हैं उनका यहां स्वागत हैं. तो फिर देर किस बात की कलम उठाईये और लिख भेजिए हमें.

भूमि का सही वितरण

सरकार को चाहिये कि वह एक ऐसी सीमा बनाये कि एक व्यक्ति को अच्छे ढंग से रहने के लिए कितनी जमीन की आवश्यकता होती है। मतलब किसी भी व्यक्ति के लिए 1000 sqft जमीन पर्याप्त है आराम से जीने के लिए। इस जगह में चार व्यक्तियों का परिवार आराम से रह सकता है। अब जमीन का अधिकार विधेयक भी पास करे, एक व्यक्ति अपने रहने के लिए 1000 sqft से ज्यादा की जमीन खरीद ही नहीं सके, ऐसा प्रावधान हो। धरती पर प्राकृतिक रूप से पायी जाने वाली समस्त चीजों पर सभी का समान अधिकार होता है फिर पीढ़ी दर पीढ़ी कोई भी इसका मालिक क्यों ? इसके बाद भी पूरी धरती खरीदने के जुगाड़ में हैं लोग। प्राकृतिक संसाधन के बंटवारे के लिए यही सोच होनी चाहिए कि सभी को बराबर मिले। जैसे सूरज का प्रकाश, बादल से पानी और बहती हवा बराबरी से मिलती है ऐसे ही जमीन सभी की है। भूगर्भ में दबे खनिज पर सभी का समान अधिकार है। खासकर उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों का तो है ही।

अगर सरकार ऐसा अभी नहीं कर पा रही है तो कम से कम ये करे कि ज्यादा जमीन खरीदने वाले को मानवता का दोषी माने और फिर उस पर दण्डात्मक कार्यवाही हो और वह भी आर्थिक दण्ड हो,। देखिये कैसे – 1000 स्केयर फीट से ज्यादा जगह का उपयोग करने वाले की संपतिकर की दर भूमि के बाजार में बिक्री भाव की दर का 10% टेक्स लगे।

1000 sqft फीट की जगह के लिए चाहे गांव हो या शहर, इस पदद्धि के लागू होते ही लोग जमीन खरीदकर भाव बढ़ाने वाला धंधा ही बंद कर देंगे। अभी होता यह है कि निर्माण पर संपतिकर लगता है खाली भूमि पर नहीं, इसलिए लोग दुनिया भर में जमीन खरीदकर दो नंबर का पैसा इनवेस्ट करते हैं। जमीन खरीदकर रखने वालों को सबक भी मिलेगा और जमीन खरीदने की प्रवृत्ति बंद होगी। जो खूब कमा रहा है वह राजस्व देगा। सरकार की कमाई बढ़ेगी। जमीन खरीदकर बेचना आदमी बेचने की तरह हैं। ऊपरी तौर पर छोटी बात महसूस होती है पर बारीक अध्ययन बताता है कि शहरों की सीमा बढ़ानें में इसी का हाथ है इसी जमीन खरीदी बिक्री के धंधे ने खेत डकार लिए, जंगल साफ कर दिये। हमारे आसपास ही नजर दौड़ाते ही पाते हैं कि लाखो sqft जमीन जाने कबसे खाली पड़ी है और जमीन के भाव आसमान पर हैं क्योंकि जमीन का मालिक, जमीन को इनवेस्टमेंट के तौर पर रखा है। न तो इसके लिए उसे टेक्स देना पड़ रहा है न ही उसके मन में दुनिया का हक मारने का दर्द है। वह तो मजे में है निष्क्रिय। दिन दुनी रात चौगुनी रफ्तार से करोड़पति बनता हुआ।

यहां तक सोचने पर कई विद्वान बहुत से प्रश्न खड़े करेंगे। बानगी कि देखिए– (1) 1000 sqft से क्या होता है? (2) जिसके पास पहले से ही ज्यादा जमीन है वो क्या करेगा ? (3) जमीन पर यदि दो तीन चार मंजिला मकान बना दिया तो कैसे टैक्स वसूलोगे? (4) खेती भी हजार स्केयर फीट में कराओगे! (5) जब पैसा कमाने के बाद उससे बड़े बनने का मौका ही नहीं मिलेगा तो लोग कमाने का क्यों सोचेंगे, वे तो आलसी हो जायेंगे। (6) पता कैसे लगाओगे कि किसके पास ज्यादा जमीन है ? देश इतना बड़ा है कि किसी भी कोने में जमीन ले सकता है आदमी।

जमीन 1000 sqft ही पर्याप्त है एक परिवार के लिए, यह तो स्पष्ट है। इसके बाद रही बात पता लगाने कि तो पैन नंबर किस दिन काम आयेगा। जब सरकार एक–एक आदमी ढूंढकर वोटरकार्ड बना सकती है तो पैन नंबर नहीं बना सकती क्या ? भूमि रिकार्ड वालों का काम होगा कि हर खरीदी बिक्री पर पैन नंबर हो। भूमि रिकार्ड खाते में दर्ज होते ही पता लग जायेगा कि किसके पास कितनी जमीन है।

अपनी जगह पर पांच मंजिला बनाकर रहे आदमी उस पर थोड़ा मोड़ा संपतिकर लिया जाय। कुल दो पांच प्रतिशत लोगों की जीवनशैली के अनुरूप देश कानून हो या फिर 95% लोगों की सुविधा के लिए हो, ये विचार करना आवश्यक है। किसी प्राकृतिक संसाधन का उपयोग करना अलग बात है पर दुरूपयोग करना, ये तो दण्ड योग्य अपराध है.। इतना भी न करे सरकार तो कम से कम खाली भूमि पर उसके भाव का वर्तमान 10% टैक्स वसूल कर ले वही काफी है।

बस्तर पाति–साहित्य सेवा

"बस्तर पाति" मात्र पत्रिका प्रकाशन ही नहीं है बल्कि इस क्षेत्र का साहित्यिक दस्तावेज है। हम और आप मिलकर तैयार करेंगे एक नई पीढ़ी; जो इस क्षेत्र का साहित्यिक भविष्य बनेगी। मिलजुलकर किया प्रयास सफल होगा ऐसा विश्वास है। हमें करना यह है कि लोगों के बीच जायें उनके बीच साहित्यिक रूचि रखने वाले को पहचाने और फिर लगातार संपर्क से उन्हें लिखने को प्रेरित करें। उनके लिखे को प्रकाशित करना ***'बस्तर पाति"*** का वादा है। रचनाशील समाज रचनात्मक सोच से ही बनता हैं, ये सच लोगों तक पहुंचाने के अलावा रचनाशील बनाना भी हमारा ही कर्तव्य है। लोक संस्कृति के अनछुए पहलूओं के अलावा जाने पहचाने हिस्से भी समाज के सम्मुख आने ही चाहिये। आज की आपाधापी वाली जिन्दगी में मानव बने रहने के लिए मिट्टी से जुड़ाव आवश्यक है। खेत–किसान, तीज–त्यौहार, गीत–नाटक, कला–संगीत, हवा–पानी आदि के अलावा घर–द्वार, माता–पिता से निस्वार्थ जुड़ाव की जरूरत को जानते बूझते अनदेखा करना, अपने पांवों कुल्हाड़ी मारना है, इसलिए हमारी सोच के साथ जीवन में भी साहित्य का उतरना नितांत आवश्यक है। साहित्य मात्र कुछ ही पढ़े–लिखे लोगों की बपौती नहीं है बल्कि लोक की सम्पदा है इसलिए सभी गरीब–अमीर, पढ़े–लिखे लोगों को जोड़ने की बात है। कला की प्रत्येक विध ाा हमें मानव जीवन सहेजने की शिक्षा देती है। हां, ये अलग बात है कि हम उसे समझना चाहते हैं या फिर समझाना नहीं चाहते हैं। लोक जीवन, लोक संस्कृति और लोक साहित्य, इन सभी में एक ही विषय समाहित है, एक ही आत्मा विराजमान है, इसलिए किसी एक पर बात करना ही हमें मिट्टी से जोड़ देता है, हमें मानव बने रहने पर मजबूर कर देता है।

मेरा निवेदन है कि हम अपने क्षेत्र के लोगों को ***"बस्तर पाति"*** से जोड़ें और उन्हें अपनी रचनात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करें। ***"बस्तर पाति"*** के पंचवर्षीय सदस्य बनकर इस साहित्यिक आंदोलन के सक्रिय सहयोगी बनें। ***"बस्तर पाति"*** को मजबूत बनाने के लिए आर्थिक आधार का मजबूत होना आवश्यक है। इस छोटी–सी किरण को सूरज बनना है और आप से ही संभव है, इसलिए रचनात्मक सहयोग के साथ ही साथ आर्थिक सहयोग प्रदान करते हुए आज ही पंचवर्षीय सदस्य बनें। अपने मित्रों को जन्मदिन और सालगिरह पर उपहार स्वरूप पंचवर्षीय सदस्यता दें। याद रखें, ज्ञान से बड़ा उपहार हो ही नहीं सकता है। हमारा पता है–

सदस्यता फार्म

मैं ***"बस्तर पाति"*** हिन्दी त्रैमासिक का पंचवर्षीय सदस्य बनना चाहता हूं। कृपया मुझे सदस्य बनायें। मेरा नाम व पता निम्नानुसार है– **नाम**–..**पता**–..

....

....

....

शिक्षा–..**अन्य जानकारी**..

मोबाइल नं.–...**ईमेल**...

500/– (रूपये पांच सौ) नगद/ मनीआर्डर / अकाउंट नंबर 10456297588 एसबीआई जगदलपुर (आईएफएस कोड 00392) द्वारा भेज रहा हूं।

हस्ताक्षर

दिनांक–

प्रति,

"बस्तर पाति"
साहित्य एवं कला समाज
सन्मति गली, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर जिला बस्तर छ.ग. पिन–494001
मो.–09425507942
ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति अंक–2 का विमोचन

बस्तर। बस्तर संभाग का सुदूर ग्राम धुरली जिला दंतेवाड़ा गवाह बना। ''बस्तर पाति'' के अंक–2 के विमोचन का गवाह! पदमश्री धर्मपाल सेनी जी के द्वारा स्थापित और संचालित माता रूकमणी आश्रम के सभागार में भव्य कार्यक्रम में बस्तर संभाग के बहुभाषी कवि श्री दादा जोकाल और कवि हृदय व कहानीकार श्री आनंद जी. सिंह, सहायक आयुक्त आदिमजाति कल्याण विभाग, एनएमडीसी के डिप्टी मैनेजर श्री राजेशसिंह के साथ समाजसेवी पदमश्री धर्मपाल सेनी के करकमलों द्वारा इस क्षेत्र की एकमात्र नियमित साहित्यिक हिन्दी त्रैमासिक ''बस्तर पाति'' का गौरवमयी विमोचन हुआ। हमेशा की तरह हमारे प्रिय 'ताऊजी' पदमश्री धर्मपाल सेनी ने अपना पूर्ण सहयोग दिया। उनके आश्रम के होनहार बच्चों ने अपनी रचनाशीलता का परिचय देते हुए गंभीर रचनाएं पढ़ी। आश्रम के प्राचार्य शर्माजी एवं अन्य शिक्षकों ने भी अपनी भरपूर ऊर्जा का प्रदर्शन किया। श्री आनंद जी. सिंह ने अपनी एक पुरानी कविता को याद कर मंच पर सुनाया। साथ ही आश्वस्त किया कि 'बस्तर पाति' का भविष्य सुरक्षित है। 'बस्तर पाति' के द्वारा बच्चों को प्रमाण पत्र भी वितरित किये गये। दादा जोकाल के द्वारा एक ही कविता को छत्तीसगढ़ी, दोरली, हल्बी, गोन्डी, तेलगु और हिन्दी में सुनाया गया जो कि अपने आप में एक विस्मित करने की घटना थी। आनंदमयी वातावरण में 'बस्तर पाति' ने दूसरे सोपान की ओर कदम रखा। कार्यक्रम में 'बस्तर पाति' से संपादक सनत जैन और सह संपादक शशांक श्रीधर ने शिरकत की।

संदीप सृजन को सम्पादक रत्न सम्मान

उज्जैन। देश की प्रतिष्ठित हिन्दी सेवी संस्था साहित्य मंडल श्रीनाथ के तत्वाधान में 14–15 सितम्बर को हिन्दी लाओ देश बचाओ' कार्यक्रम में शब्द प्रवाह साहित्यिक शोध पत्रिका के माध्यम से हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए श्री संदीप सृजन को सम्पादक रत्न की मानद उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया गया। वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामअवतार शर्मा(आगरा), राव मुकुल श्रीमानसिंह, श्री जगदीशचन्द्र शर्मा, डॉ. उमाशंकर मिश्र(गाजियाबाद), डॉ. आनंद सुमनसिंह(देहरादून), श्री मुरलीधर वैष्णव एवं डॉ. पाठक ने श्री सृजन को सम्मान–पत्र प्रदान कर सम्मानित किया। कार्यक्रम का संयोजन श्री श्यामप्रकाश देवपुरा ने किया, संचालन श्री विट्ठल जी ने किया। चार सत्रों में हुए दो दिवसीय भव्य आयोजन में कवि सम्मेलन एवं हिन्दी संगोष्ठि का आयोजन भी हुआ।

विमल तिवारी को उत्कृष्ठ काव्य लेखन सम्मान

बस्तर। नवरंग काव्य मंच रायपुर द्वारा राज्य स्तरीय स्व. चंद्रबलीसिंह स्मृति काव्य लेखन प्रतियोगिता आयोजित की गयी। इस प्रतियोगिता में छत्तीसगढ़ के अस्सी से ज्यादा कवियों ने भाग लिया और अपनी उत्कृष्ठ रचनाएं भेजीं। इस राज्य स्तरीय प्रतियोगिता में नौवां स्थान प्राप्त कर श्री विमल तिवारी ने बस्तर जैसे पिछड़े क्षेत्र का नाम रोशन किया। 18 अक्टूबर 14 को रायपुर के वृन्दावन हाल में आयोजित भव्य कार्यक्रम में उन्हें प्रशस्ति–पत्र, लेखनी आदि से सम्मानित किया गया। वर्तमान में श्री विमल जी हाईस्कूल करंजी विकासखण्ड तोकापाल में व्याख्याता पद पर कार्यरत हैं।

उनके इस सम्मान पर 'बस्तर पाति' परिवार बधाई देता है और उनके उज्जवल भविष्य की कामना करता है। छत्तीसगढ़ हिन्दी साहित्य परिषद, जगदलपुर, छत्तीसगढ़ शिक्षक संघ, व्याख्याता संघ समिति मा.शा. एवं प्राचार्य हाई स्कूल श्री रविन्द्र विश्वास आदि ने ढेरों शुभकामनाएं दीं।

चार पुस्तकों का विमोचन जगदलपुर। 'बस्तर पाति' के मंच से कहानीकार श्री महेश्वर नारायण सिन्हा दल्ली राजहरा के मुख्य आतिथ्य में एवं क्षेत्र के वरिष्ठ विचारक श्री जयचंद जैन की उपस्थिति में 2 नवम्बर 14 को महावीर भवन जगदलपुर में बस्तर क्षेत्र के 24 कवियों की कविताओं का संकलन **'अरण्यधारा–1'** लोकार्पित किया गया। कार्यक्रम में श्री शशांक श्रीधर की कविताओं का संग्रह **'जीवन के मायने'**, श्री सनत जैन का कहानी संग्रह **'बस्तर मेरा देश'** भी लोकार्पित हुआ। ये तीनों पुस्तकें **'बस्तर पाति प्रकाशन'** के प्रथम प्रयास का नतीजा है। लागत मूल्य पर प्रकाशन की योजना के तहत इनका प्रकाशन किया गया है। इन पुस्तकों के कवर पेज श्री नरसिंह महान्ती जी ने बड़ी लगन से बनाये। श्रीमती ख़ादीजा ख़ान की उम्दा कविताओं का संग्रह **'संगत'** भी विमोचित किया गया। इस अवसर पर हाइकू–पोस्टर प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। अन्य मंचासीन अतिथि थे श्री उमर हयात रिजवी कोण्डागांव, श्री शिव कुमार पाण्डे, श्री राजाराम त्रिपाठी कोण्डागांव, श्रीमती शांती तिवारी, श्रीकृष्ण शुक्ल, सुश्री उर्मिला आचार्य, डॉ. योगेन्द्र राठौर, श्री रऊफ परवेज, श्रीमती मोहिनी ठाकुर। भोजनावकाश के बाद 'मेगा काव्यगोष्ठि' का भी आयोजन था।मंच संचालन श्री राजेश श्रीवास्तव व डॉ.चंद्रेश शर्मा ने किया।

कविता कैसे बदले तेरा रूप

कविता का रूप कैसे बदलता है देखें जरा। नये रचनाकार ने लिखा था, नवीन प्रयास था इसलिए कसौटी पर खरा नहीं उतरा। उसी कविता को कैसे कसौटी पर खरा उतारें–

हम ठूंठ हैं
निशान हैं /कभी हमारे बड़े होने का
हम ठूंठ हैं
यत्र–तत्र–सर्वत्र
बिखरे पड़े हैं
बड़े–छोटे–मंझोले
कोई न बचा अंधी भूख से
जो पेट नहीं
बल्कि पेटी को सताती है
हम ठूंठ हैं
झेल रहे हैं
अपने दोबारा
न उग पाने का अभिशाप
हम ठूंठ हैं।

यही कविता कुछ अन्य पंक्तियां जोड़ने पर देखें कैसे रूप बदलकर रोमांचित करती है–

हम ठूंठ हैं
निशान हैं /कभी हमारे बड़े होने का
निशान हैं/ तुम्हारे क्रूर होने का
हम ठूंठ हैं
यत्र–तत्र–सर्वत्र
बिखरे पड़े हैं
बड़े छोटे मंझोले
कोई न बचा अंधी भूख से
जो पेट नहीं
बल्कि पेटी को सताती हैं
हम ठूंठ हैं
झेल रहे हैं
अपने दोबारा
न उग पाने का अभिशाप
हम ठूंठ हैं
हम प्रतीक हैं
तुम्हारे बुद्धिजीवी होने का
प्रतीक हैं
तुम्हारे सर्वगुणसम्पन्न होने का!

फेसबुक वॉल से

इतनी कुंठा और निराशा ठीक नहीं
सबको गाली देती भाषा ठीक नहीं।

आप बड़े ज्ञानी–ध्यानी हैं मान लिया
लेकिन सब है उक बताशा ठीक नहीं।

परिवर्तन लाने वाले होते हैं थोड़े से
हर व्यक्ति से ऐसी आशा ठीक नहीं।

हमसे ही बदलेगी ये दुनिया इक दिन
काम करो कुछ हर पल झांसा ठीक नहीं।

सब हंसते हैं तुम पे कुछ सोचा भी है ?
हर पल तेरा नया तमाशा ठीक नहीं।

श्री गिरिश पंकज की वाल से दिनांक 5 सितम्बर 2014

औक़ात

इन बेहद गर्म दिनों
बड़ी औकात है सूरज की
पर मज़दूर लछमन के सामने
क्या बिसात इसकी....
लू–लपट–घाम में झुलस रहा
लछमन अपने माथे पर
फेरेगा एक अंगुली बस....
टपक पड़ेगा सूरज
उसी वक्त
ज़मीन पर....

श्री हिमांशु शेखर झा की वाल से दिनांक 5 सितम्बर 2014

बस्तर पाति के लिए विज्ञापन दर

पत्रिका में स्थान	***दर प्रति अंक***
(मल्टीकलर)	
पिछला पेज	
पूरा	*10000/–*
आधा	*5000/–*
पिछले से पहला	
पूरा	*5000/*
आधा	*3000/*
मध्य के दो पेज पूरे	*20000/*
(ब्लैक एण्ड व्हाइट)	
भीतर के पेज में कहीं भी	
पूरा	*2000/–*
आधा	*1000/–*
एक चौथाई	*500/–*
सभी पेज में नीचे एक लाइन की विज्ञापन पट्टी	*10000/–*

बस्तर पाति को मूर्त रूप देने वाले सहयोगी

संस्थापक सदस्यः—

श्री एम.एन.सिन्हा, दल्ली राजहरा छ.ग.

श्री आशीष राय, जगदलपुर, छ.ग.

श्री अमित नामदेव, रायपुर, छ.ग.

श्री गौतम बोथरा, रायपुर, छ.ग.

श्री कमलेश दिल्लीवार, रायपुर, छ.ग.

श्री सुनील अग्रवाल, कोरबा, छ.ग.

श्री संजय जैन, भाटापारा, छ.ग.

श्रीमती ममता जैन, जगदलपुर, छ.ग.

श्री सनत जैन, जगदलपुर, छ.ग.

परम सहयोगीः—

श्रीमती उषा अग्रवाल, नागपुर

श्री शशांक श्रीधर, जगदलपुर

श्री महेन्द्र जैन, कोण्डागांव

श्री आनंद जी. सिंह, दंतेवाड़ा

श्री योगेन्द्र मोतीवाला, जगदलपुर

श्री जगदीश मोगरे, जगदलपुर

श्री विमल तिवारी, जगदलपुर

श्री उमेश पानीग्राही, जगदलपुर

सदस्यः—छत्तीसगढ़ से—श्रीमती जयश्री जैन, जगदलपुर, श्रीमती रचना जैन, जगदलपुर, श्री शमीम बहार, जगदलपुर, श्री मनीष अग्रवाल, जगदलपुर, श्री श्याम नारायण श्रीवास्तव, रायगढ़, श्रीमती अशलेषा झा, जगदलपुर, श्री महेश बघेल, जगदलपुर, श्री नलिन श्रीवास्तव, राजनांदगांव, श्री ऋषि शर्मा 'ऋषि' जगदलपुर, श्री विरेन्द्र कुमार मौर्य, जगदलपुर, श्री टी आर साहू, दुर्ग, श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे, जगदलपुर, श्रीमती बरखा भाटिया, कोण्डागांव, श्री निर्मल आनंद, कोमा, राजिम, श्री कांति अरोरा, बिलासपुर, श्री राजेन्द्र जैन, भिलाई, श्री मिश्रा जी, जगदलपुर, श्री नूर जगदलपुरी, जगदलपुर, श्री हरेन्द्र यादव, कोण्डागांव, श्री महेन्द्र यदु, कोण्डागांव, श्री एस.पी.वर्मा, कोण्डागांव, सुश्री उर्मिला आचार्य, जगदलपुर, श्रीमती प्रभाती मिंज, बिलासपुर, श्रीमती सोनिका कवि, जगदलपुर, श्री जितेन्द्र भदोरिया, जगदलपुर, श्री बी.आर. तिवारी, महासमुंद, मे. होटल रेनबो, जगदलपुर, श्री संजय मिश्रा, रायपुर, श्री इश्तियाक मीर, जगदलपुर, माहेश्वरी यदु, जगदलपुर, श्री फिरोज बस्तरिया, जगदलपुर, श्री रवि माहेश्वरी, जगदलपुर, सुश्री सोनिया कुशवाह, जगदलपुर, श्रीमती पूर्णिमा सरोज, जगदलपुर, रूपाली सेठिया, कोण्डागांव, श्री राजेश श्रीवास्तव, जगदलपुर, श्री महेन्द्र सिंह ठाकुर, जगदलपुर, श्री चंद्रशेखर कच्छ, जगदलपुर, मं.पदमावती किराना स्टोर्स जगदलपुर, श्री दिलिप देव, जगदलपुर, तृप्ति परिडा, जगदलपुर, श्री धरमचंद्र शर्मा, जगदलपुर, श्री जी.एस. वरखड़े, जबलपुर, लक्ष्मी कुडीकल, जगदलपुर, श्री अनिल कुमार जयसवाल, जगदलपुर, श्री वीरभान साहू, रायपुर, प्रीतम कौर, जगदलपुर, श्री मनीष महान्ती, जगदलपुर, श्री प्रणव बनर्जी, जगदलपुर, शेफालीबाला पीटर, जगदलपुर, श्री यशवर्धन यशोदा, जगदलपुर, श्री शरदचंद्र गौड़, जगदलपुर, श्री सुरेश विश्वकर्मा, जगदलपुर, श्रीमती शांती तिवारी, जगदलपुर, श्री विनित अग्रवाल, जगदलपुर,

सदस्यः—छत्तीसगढ़ से बाहर—श्रीमती रजनी साहू, मुबई महाराष्ट्र, श्रीमती वंदना सहाय, नागपुर. महाराष्ट्र, श्रीमती माधुरी राउलकर, नागपुर, श्रीमती रीमा चढ्ढा, नागपुर, श्री अरविन्द अवस्थी, मिर्जापुर, यूपी, श्री देव भंडारी, दार्जीलिंग, श्री जगदीशचंद्र शर्मा, घोड़ाखाल नैनीताल
श्रीमती विभा लक्ष्मी, जयपुर, श्री अखिल रायजादा, नुपूर शर्मा, भोपाल

कहानी प्रतियोगता—

''बस्तर पाति'' आयोजन करता है अपने सुधि और विद्‌वान लेखकों, पाठकों, और सदस्यों के लिए कहानी प्रतियोगिता—1! इस कहानी प्रतियोगिता का नियम हैं मात्र आपका रचनाकार होना। तो कलम उठाईये और लिख भेजिए ज्यादा से ज्यादा 3000 शब्दों की कहानी। विषय तो वही होगा न जो आपका पसंदीदा है। 1000/— के दो प्रथम पुरस्कार! एक पुरस्कार विद्यार्थियों के लिए चाहे वे कहीं भी अध्ययनरत हों, मात्र अंकसूची की फोटोप्रति लगा दें। दूसरा पुरस्कार सभी के लिए न तो उम्र का बंधन न ही विषय का बंधन! अंतिम तारीख है 14 फरवरी 2015! निर्णायक मण्डल में हैं श्री महेश्वर नारायण सिन्हा, दल्लीराजहरा और श्री सनत जैन, जगदलपुर।

तो फिर देर किस बात की आज ही भेजिए चाहे तो पत्र द्वारा या फिर ई—मेल से जो भी आपके लिए सुविधाजनक हो।

बस्तर पाति का कवर पेज एवं भीतर के चित्र—
श्रीमती मोहिनी ठाकुर

श्रीमती मोहिनी ठाकुर छोटी—छोटी कविताओं का जाना पहचाना नाम है। इस पिछड़े क्षेत्र में इतनी ज्यादा संख्या में रचनाकार होंगे जानकारी न थी।कला से जुड़े लोग चुपचाप अपना काम करते रहते हैं और इसकी जानकारी होती हैं मात्र उनसे जुड़े कुछ लोगों को।

मोहिनी जी उन्हीं कुछ चुपचाप करने वालों में से एक हैं। अपनी तूलिका से ग्रामीण परिवेश को केनवास पर उतारना इनके दिल को शांति पहुंचाता है। प्रकृति से इनका जुड़ाव इनके लेखन में भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। गाढ़े रंग का प्रयोग इनके चित्रों की खासियत है तो ग्राम जीवन विषय है। उनकी पेन्सिल की नोक पर सवार रेखाचित्र जब—तब उनके यहां उपलब्ध पन्नों पर निखर—निखर आते हैं। अपने इन अनमोल रत्नों को सहेजकर रखना इनकी फितरत नहीं है इसलिए इनके पास कलेक्शन उपलब्ध नहीं है पर अनुरोध पर कुछ ही दिनों के भीतर तैयार कर पहुंचा दिया। अपने रेखाचित्रों में चेहरों के भाव उकेरना उनसे सहजभाव से हो जाता है।